UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182782

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—707—25-4-81—10,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H649.8 S49P Accession No. P.G. 16398

Author सेठ, जनक बिहारी

Title परिचर्या-प्रणाली. 1931

This book should be returned on or before the date last marked below

महिला-पुस्तकमाला—३

परिचर्य्या-प्रणाली

अर्थात्

रोगी की शुश्रूषा करने के लिए सरल उपदेश

डाक्टर अनलबिहारी सेठ
एम० बी०, बी० एस०
आनरेरी मेडिकल आफ़िसर, सेंट्रल हिन्दू स्कूल, कमच्छा-बनारस

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग
१९३१

Price -/12/-

मूल्य ।।।)

विषय-सूची

अध्याय पृष्ठ

पहला अध्याय १

गृहनिर्वाचन, बिस्तर, मित्रों से भेंट करने के नियम और मलमूत्र का प्रबंध।

दूसरा अध्याय ४

परिचारक का कर्तव्य, भूल, काम से छुट्टी लेना, नोटबुक, आवश्यक वस्तु, नुसख़ा और दवाइयों की सँभाल, रोगी की सेवा—पंखा करना, पानी पिलाना, बरफ़ के फ़ायदे, स्नान कराना, मुँह धोना, कुल्ली कराना, उठाना, बिठाना, निद्रा लाना, बिस्तर बदलना, रोगी की सेवा करना।

तीसरा अध्याय १५

ओषधिप्रकरण—

साधारण शिक्षा, नापने की विधि, गोली, चूर्ण, गरारा तथा बफारे का देना, आँख में दवाई डालना, मालिश करना, पुलटिश बाँधना, राई की पुलटिश, कोयले की पुलटिश, प्लास्टर, सूखा सेंक, तर सेंक, स्पंज करना, भाफ देना, एनीमा देना इत्यादि।

चौथा अध्याय २५

रोगी के लिए पथ्य बनाने की विधि—

साबू दाना, बारली, पर्ल बारली, अरारोट, जौ का पानी, अलसी

अध्याय पृष्ठ
(तीसी) की चाय, बेंजर्स फ़ूड, मेलिन्स फूड, एलेन वरीज़ फूड और हार्लिक्स माल्टेड मिल्क, दाल का जूस, मांस का जूस, चोकर की रोटी।

पाँचवाँ अध्याय २८

मानवशरीर की रचना और अंगों के कार्य—

अस्थिपंजर, सिर की हड्डियाँ, धड की हड्डियाँ, हाथ की हड्डियाँ, पैर की हड्डियाँ, संधियाँ (जोड़) और स्नायु, मांस-पेशियाँ (पुट्ठे), कंडरा, दाँत, पाचन-संस्थान, जीभ, छोटी आँत; बड़ी आँतें, रक्त का प्रवाह, श्वासनक्रिया और रक्त की शुद्धि, फेफड़े, रक्त (ख़ून), तिल्ली (प्लीहा वरवट), गुर्दा और मुख, त्वचा (खाल), मस्तिष्क (दिमाग़), नाड़ीतंतु और नाड़ी-कोष, आँख, कान, वाणी, गंधि या बास, साधारण ज्ञान।

छठा अध्याय ५३

शिशु—बालक की वृद्धि और विकाश—

तौल, लम्बाई, ब्रह्मतालु, पाचन-संस्थान, ग्रंथियाँ, निद्रा, ज्ञानेन्द्रियाँ, इच्छानुसार संकेत करना, चलना-फिरना इत्यादि। वाणी, कपड़े, गहना पहनाना, खेलना, व्यायाम, दाँतों का निकलना, आहार, बच्चे को काफ़ी दूध मिलने की पहचान, माता का दूध छुड़ाना, ऊपरी दूध, धाय, शीशी, गाय का दूध, विलायती बने हुए दूध, अफ़ीम और अन्य मादक पदार्थ।

सातवाँ अध्याय ६७

भिन्न भिन्न रोगों में रोगी के सम्बन्ध की जानने योग्य बातें—

उदरसंबंधी रोग में जानने योग्य बातें—भूख, भोजन (पथ्य), उल्टी (वमन), डकारें, वायु का भर जाना, पाख़ाना,—नेत्र पीला पड़ने और जिगर के स्थान में दर्द में जानने योग्य बातें, हृदयसंबंधी रोग, साँस का फूलना, धड़कन, निद्रा, चक्कर आना, खाँसी, बलग़म (कफ़), छाती का दर्द, साँस फूलना, गुर्दे और मूत्रसंबंधी रोग, पेशाब, खाल की

अध्याय पृष्ठ

बीमारियाँ, दिमाग़ी बीमारियाँ, हड्डी और जोड़ों के रोग, छोटे बच्चों के रोगों में जानने योग्य बातें—थर्मामीटर, नाड़ी और श्वास गिनना, नाड़ी और श्वास की आपेक्षिक समता, नाड़ी की गति और ताप का आपेक्षिक संबंध, ज्वर, ज्वर का उतार, क्रिनिकल चार्ट या रोगी का व्यवस्थादर्शक चित्र, पाख़ाना, बलग़म और थूक।

आठवाँ अध्याय ७८

शस्त्रचिकित्सा—

कीटाणु, कीटाणुओं पर सूर्य की किरणों का प्रभाव; प्रकृति में कीटाणुओं का कार्य, कीटाणुओं की स्थिति, सरजरी, एसेप्टिक सरजरी, आपरेशन करने या घाव को साफ़ करने के पहले हाथों की सफ़ाई, आपरेशन करने के स्थान की, खाल की सफ़ाई, चीर फाड़ में काम आनेवाले औज़ारों की सफ़ाई, ड्रेसिंग (मलहमपट्टी) की सफ़ाई, कीटाणुनाशक पदार्थ, फिनीलसमुदाय, पारे से बनी हुई ओषधियों का समुदाय, आइयोडीनसमुदाय के कीटाणुनाशक पदार्थ, क्लोरीनसमुदाय के कीटाणुनाशक पदार्थ, भिन्न भिन्न प्रकार के कीटाणुनाशक पदार्थ, अलकोहल और स्पिरिट, हाइड्रोजन पैरेक साइड, फार्मेलीन, बोरिक एसिड आदि।

परिचर्य्या-प्रणाली

पहला अध्याय

गृह-निर्वाचन, बिस्तर, मित्रों से भेंट करने के नियम और मल-मूत्र का प्रबन्ध।

ग़रीबों के मकानों में केवल एक ही कमरा होता है और उसी में रोगी तथा स्वस्थ मनुष्य सभी रहते हैं। परन्तु जिनको भगवान् ने कुछ सामर्थ्य दी है उनको चाहिए कि रोग-ग्रसित होने की दशा में अलग कमरे में रहें। रोगी के लिए ऐसा कमरा होना चाहिए जिसमें प्रकाश और हवा की अच्छी तरह से पहुँच हो। यदि उसकी छत ऊँची और ऊपर रोशनदान हो तो और भी उत्तम है।

जिस प्रकार प्रकाश के बिना पौधों के पत्ते पीले पड़ जाते हैं, रोगी मनुष्य पर भी प्रकाश के अभाव का वैसा ही बुरा प्रभाव होता है।

कमरे में न तो सीलन और न व्यर्थ का सामान होना चाहिए। फूलदान और तसवीरों का रहना बुरा नहीं है। रोगी की चारपाई न तो बहुत ऊँची और न बहुत चौड़ी हो, चौड़े पलँग पर रोगी को सहायता देने के लिए चढ़ना पड़ता है जिसमें रोगी और परिचारक दोनों को असुविधा होती है। चारपाई दीवार से कम से कम एक फुट अलग बिछाई जानी चाहिए।

पैरों की तरफ़ कोई खिड़की नहीं होनी चाहिए, क्योंकि रोगी की दृष्टि उसी ओर जायगी।

कमरे में तेज़ रोशनी रहने से रोगी को बुरा लगता है यदि संभव हो तो कभी कभी चारपाई और बिस्तर बदल देना चाहिए। परिचारक के बैठने के लिए एक अच्छी-सी कुर्सी और पैर रखने के लिए एक छोटी-सी तिपाई ज़रूरी है। पास ही एक छोटी-सी मेज़ होनी चाहिए जिस पर दवाई की शीशियाँ तथा अन्य आवश्यक चीज़ें रक्खी जा सकें। रोगी के कमरे में घृणा पैदा करनेवाली कोई वस्तु न होनी चाहिए। मल-मूत्र फ़ौरन हटा दिया जाय। खाने पीने की वस्तुएँ भी बाहर रहें, केवल आवश्यकता पड़ने पर ही अन्दर लाई जायँ। रोगी का जूठा खाना और पानी किसी को व्यवहार न करना चाहिए।

रोगी के लिए शुद्ध वायु अत्यन्त आवश्यक है, इसलिए ऋतु का ध्यान रखते हुए रोगी को कपड़े उढ़ाकर कमरे की सब खिड़कियाँ और दरवाज़े कुछ देर के लिए दिन में दो तीन बार खोल देने चाहिए जिसमें शुद्ध वायु, जिसमें संजीवनी-शक्ति है और सूर्य की रोग-कीटाणु-नाशिनी और स्वास्थ्य-कारिणी किरणें कमरे में अच्छी तरह से प्रवेश करके उसे शुद्ध कर सकें। कमरे में धूप-बत्ती या लोबान इत्यादि वायु की दुर्गन्धि को छिपानेवाली और मच्छड़ों, भुनगों, पिस्सू इत्यादि कीड़ों को भगानेवाली वस्तुओं का सुलगाना बुरा नहीं है। किन्तु इन पदार्थों का धुआँ बन्द कमरे की दूषित वायु को साफ़ नहीं करता केवल अपनी गंध दे देता है।

कमरे में पूरी सफ़ाई होनी चाहिए और चिकित्सक के आने पर जिन चीज़ों की साधारणतया आवश्यकता होती है वे सब मौजूद रखनी चाहिएं। हमारे देश में चिमनीदार कमरे साधारणतया मकानों में नहीं होते हैं; सर्दी के दिनों में कमरों को गरम रखने के लिए कोयलों की अँगीठी रक्खी जाती है। रोगी के कमरे में जो अँगीठी जलाई जाय उसको बाहर सुलगाना चाहिए। घर में अँगीठी पर कोयले रख कर दहकाना बुरा है। क्योंकि कोयलों के दहकने से पहले का धुआँ स्वास्थ्य

के लिए हानिकारक होता है। दहकते हुए कोयले बाहर से लाकर रक्खे जाने में कुछ हानि नहीं है।

रोगी से मिलने के लिए जो बन्धु-बांधव आवें उनके लिए चिकित्सक से आज्ञा ले लेनी चाहिए। छूतवाली बीमारी में किसी को रोगी के पास न आने देना चाहिए। ख़ाली पेट किसी को रोगी के पास न जाना चाहिए। रोगी के छूनेवालों को अपने हाथ साबुन लगाकर साफ़ पानी से धो डालना चाहिए। मिलनेवालों को बहुत बातें न करने दे। न रोज़गार, पेशा, दुकानदारी या लड़ाई झगड़ेवाली ऐसी बातें करने दे जिनसे रोगी के दिमाग़ पर ज़ोर पड़े और न बहुत देर तक उन्हें बैठने देना चाहिए। मिलनेवालों को इस ढंग से बैठावे कि रोगी को उसका चेहरा अच्छी तरह से दिखलाई पड़े; उन्हें देखने के लिए उसे इधर-उधर सिर न हिलाना-डुलाना पड़े। रोगी के पास मुँह ले जाना या उसके ऊपर झुक कर बातचीत करना अच्छा नहीं है।

दरवाज़े या खिड़कियों पर चिकों का लगाना बहुत अच्छा है। इससे मक्खी और मच्छरों से बचाव रहता है। पाख़ाने-पेशाब के लिए मिट्टी के गमले काम में लाने चाहिएं। रोगी को उठाकर दूर पाख़ाने में ले जाना बहुत हानिकारक है। फ़र्श पर मल-मूत्र त्याग कराना भी बहुत बुरा है। इससे दुर्गन्धि फैलती है और गन्दगी बढ़ती है। निर्बल रोगियों को बिस्तर पर ही पाख़ाना कराने की ज़रूरत होती है। इसके लिए मिट्टी या तामचीनी का बेडपैन अच्छा होता है। बेडपैन दो प्रकार के होते हैं एक गोल और दूसरा स्लीपर के आकार का। बिस्तर पर कमर के नीचे मोमजामा बिछा कर बेडपैन चूतरों के नीचे खिसका दिया जाता है। गोलाकार बेडपैन लगाने के लिए कमर उठाने की ज़रूरत होती है। और स्लीपर के आकार वाले के लिए रोगी को एक करवट से दूसरी करवट लिटा कर पतले सिरे को नीचे करना पड़ता है। बेडपैन में दुर्गन्धि-नाशक वस्तु जैसे फ़िनायल डाल रखनी चाहिए।

दूसरा अध्याय

परिचारक का कर्तव्य, भूल, काम से छुट्टी लेना, नोट-बुक, आवश्यक वस्तु, नुसखा, और दवाइयों की सँभाल, रोगी की सेवा—पंखा करना, पानी पिलाना, बरफ के फायदे, स्नान कराना, मुँह धोना, कुल्ली कराना, उठाना, बैठाना, निद्रा लाना, बिस्तर बदलना, रोगी की सेवा करना।

बहुतों के घरों में कोई न कोई बड़ी बूढ़ी या बहू बेटी ऐसी होती है जिसे रोगी की सेवा करने का बड़ा चाव होता है। उससे जो कुछ कहा जाता है बड़ी समझ और चतुराई से करती है। उसे कभी थकावट नहीं मालूम होती। रोगी की सेवा करनेवाली को तन्दुरुस्त होना चाहिए। जो स्वयं दुर्बल है अथवा जिसका स्वभाव चिड़चिड़ा है उससे रोगी की सेवा कभी नहीं हो सकती। जिस प्रकार से माँ अपने बच्चे की चौकसी करती है परिचारक को भी वैसा ही ध्यान रोगी पर रखना चाहिए। परिचारक को शान्तचित्त, हँसमुख और मिहनती होना चाहिए। इधर-उधर की बातों पर मन न भटका कर डाक्टर, वैद्य या हकीम की बातों पर ही विश्वास करना चाहिए। परिचारक रोगी के लिए बतलाई हुई बातों से टलनेवाला न हो, उसमें आलस्य बिल्कुल न हो, नेत्रों से उसे अच्छी तरह से दिखलाई पड़ता हो।

घृणा या किसी प्रकार का परहेज़ करनेवाला न हो; क्योंकि जिसके स्वभाव में घृणा है उससे रोगी की सेवा ठीक ठीक नहीं हो सकती। उसे अपने सुख और आराम का विशेष ध्यान रखना ठीक नहीं है।

जिसका स्वभाव स्थिर नहीं है वह रोगी के कहने में आकर उसे मनमाना व्यवहार करने देगा जिसके कारण रोगी के अच्छे होने में विलम्ब होगा। कभी कभी रोगी को उसकी इच्छा के विरुद्ध ओषधि देनी होती है जिसके लिए थोड़ा कड़ा होना पड़ता है।

परिचारक इस बात का ध्यान रक्खे कि रोगी की चिकित्सक से श्रद्धा न हटने पावे। रोगी सदा अपनी बीमारी ही की धुन में मग्न न रहने पावे, और न चिकित्सा की पुस्तकें ही पढ़ने देवे। क्योंकि ऐसा करने देने से रोग बढ़ता है।

ओषधि देने अथवा खान-पान की तैयारी में कुछ भूल-चूक हो गई हो तो चिकित्सक से अवश्य कह देना चाहिए। ऐसी बातों का छिपाना बहुत बुरा है। चिकित्सक भूलों का सुधार कर सकता है। यदि चिकित्सक की आज्ञा का ठीक से पालन नहीं किया जाता और यह बात उसको जताई भी नहीं जाय तो रोगी को बड़ा नुकसान पहुँचता है। चिकित्सक नुसखे पर नुसखा बदलता है, तरह तरह का पथ्य देता है परन्तु जब उसकी आज्ञा का पालन ही न होगा तो उसकी चेष्टाएँ कैसे सफल हो सकती हैं। ऐसी दशा में रोगी की मृत्यु तक हो सकती है। इसलिए यह आवश्यक है कि जिस ओषधि या पथ्य देने में चिकित्सक की आज्ञा का पालन न हुआ हो उसे ठीक ठीक बतला दिया जाय। यदि परिचारक को निद्रा आ रही हो या होश हवास ठीक न हों तो पहले मुँह धोकर चित्त सावधान करे और तब रोगी को ओषधि दे। उनींदेपन में भारी भूलें हो सकती हैं। थर्मामेटर लगाना हो या बीमारी का हाल लिखना हो तो उस समय भी चित्त सावधान होना चाहिए।

परिचारक स्वयं नीरोग हो। अपने कपड़े साफ़ रक्खे। रोगी का काम करने के उपरान्त सदा अपने हाथ धो डाले। अपने भोजन करने और सोने का समय स्थिर करले क्योंकि कोई भी रात-दिन जाग कर ठीक ठीक काम नहीं कर सकता। पारी पारी से काम करना चाहिए।

उचित तो यह है कि शाम से १० बजे तक एक, १० से २ बजे तक दूसरा और २ से सबेरे तक तीसरा परिचारक रोगी की सेवा में रहे। यदि रोगी की हालत ख़राब हो तो दो परिचारकों को रात्रि भर जागते रहना चाहिए।

प्रायः रोगी की सेवा करनेवाले कई लोग होते हैं। ऐसी दशा में ओषधि और पथ्य देने का भार एक के ही सिर पर होना चाहिए। उसे ओषधियाँ इत्यादि के देने का क्रम भलीभाँति समझा देना चाहिए। और जब एक परिचारक को किसी कार्यवश रोगी के पास से बाहर जाना हो तो दूसरे परिचारकों को ओषधि इत्यादि का क्रम भलीभाँति समझा जाना चाहिए। रोगी की हालत रोज़ एक छोटी सी नोटबुक में लिख लेना चाहिए। चिकित्सक ओषधि इत्यादि के लिए जो आज्ञा दे जावे वह भी सब नोटबुक में लिख लेनी चाहिए। साधारणतया रोगी का बुख़ार चार चार घंटे पर नापा जाता है। यह भी नोटबुक में लिख लेना चाहिए। रोगी की हालत में यदि किसी प्रकार का परिवर्तन मालूम हो; जितनी बार पेशाब पाख़ाना हुए हों उसका रंग और आकार भी लिख लेना चाहिए। रोगी की सेवा के लिए जिन जिन वस्तुओं का व्यवहार होता हो उन्हें ऐसे ढंग से रखना चाहिए कि वे आवश्यकता पड़ते ही मिल जायँ। रोगी के कमरे में साधारणतया नीचे लिखी वस्तुएँ रहनी चाहिएं—मोमबत्ती, लालटैन, पानी गरम करने का बरतन, चक्कू, कैंची, फलालैन का टुकड़ा, सेफ़्टी पिनें, सुई, धागा, आलपीनें, धुले हुए झाड़न, मोमजामा, ओषधि नापने का गिलास, चम्मच, दियासलाई, खाँसने खखारने के लिए मिट्टी का गमला, या तामचीनी का तसला, या कोई और पात्र। पाख़ाने पेशाब के लिए कोई पात्र जैसे मिट्टी या तामचीनी का बेडपैन और यूरिनल अर्थात् पेशाब कराने की शीशी या तामचीनी की बोतल, साबुन, तौलिया, विलायती साफ़ की हुई रुई, कम्बल, हाथ धुलाने के लिए पानी रखने का कोई

पात्र जैसे तामचीनी या जर्मन सिलवर का जग या लोटा, स्पिरिट लैम्प, या मिट्टी के तेल से जलनेवाला स्टोव, पंखा, क़लम, दावात, काग़ज़, घड़ी, थर्मामेटर, फ़िनायल या बदबू दूर करनेवाली दूसरी दवाई, और यदि वैद्यक या हिकमत से इलाज होता हो तो खल्लड़, सिल लोढ़ी, शहद आदि पदार्थ भी हों। चिकित्सक के लिखे हुए नुसख़ों को सँभाल कर रखना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि जब कभी इलाज बदलने की ज़रूरत होती है और दूसरा चिकित्सक आता है तब वह पिछले नुसख़ों को देखना चाहता है। कभी कभी उसी चिकित्सक को अपने पुराने नुसख़े देखने की आवश्यकता होती है। रोग चाहे साधारण ही क्यों न हो, इन बातों को अवश्य ध्यान में रखना चाहिए। क्योंकि जो रोग आज बहुत साधारण प्रतीत होता है संभव है वह बाद को विषम हो जाय।

ओषधियाँ ऐसे यत्न से रखनी चाहिएं कि रोगी उनको स्वयं न पा सके क्योंकि कभी कभी जल्दी से अच्छा होने की इच्छा से रोगी अधिक मात्रा में ओषधि खा लेता है या नियत समय से पहले ही उसे अपने आप पी लेता है अथवा किसी एक ओषधि के बदले में दूसरी पी जाता है जिसका परिणाम कभी कभी बहुत बुरा होता है। किसी किसी रोगी को ओषधि अच्छी नहीं लगती, मौक़ा पाते ही वह शीशी उलट कर ख़ाली कर देता है। रोगी को अपने आप ओषधि पीने का अवसर ही न देना चाहिए। मालिश करने या बाहर लगाने की दवाएं खाने-पीने की दवाइयों से अलग हटा कर रखनी चाहिए। मालिश करने और घाव धोनेवाली तथा लेप करने की ओषधियाँ प्रायः ज़हरीली होती हैं। इसलिए इन सबको पीनेवाली ओषधियों से जहाँ तक हो दूर ही रखना उचित है। इस बात को सदा ध्यान में रखना चाहिए। इसमें कभी भी भूल-चूक न होने पावे।

रोगी के शारीरिक सुख के लिए कई बातें करनी पड़ती हैं, जैसे पंखा झलना। बहुत से लोग शरीर की गर्मी दूर करने के लिए हवा करने

और प्यास बुझाने के लिए पानी देने में आपत्ति करते हैं। जिस समय रोगी गर्मी से घबड़ा रहा हो उस समय उसे पंखा न झलने देना अमानुषिक है। गर्मी को शान्त करनेवाली पंखे की वायु कभी भी हानिकारक नहीं होती है। बाहरी हवा के झकोरों को रोगी के शरीर पर लगने देने से अवश्य बचाना चाहिए। पंखे की हवा सिर पर लगनी चाहिए। हवा ज़ोर से न की जाय। ऐसा करने से रोगी भी हवा के झोंकों से घबड़ा उठता है और पंखा हाँकनेवाला भी जल्दी थक जाता है। जिस समय रोगी का जी मिचलाता हो उसे सिर से पैरों की तरफ़ पंखा करना चाहिए। पित्तज्वर में नीम की पत्तियों की मूर्छल से हवा करना अच्छा है।

बहुधा देखा गया है कि ज्वर के वेग में जिस समय रोगी प्यास से छटपटा रहा हो, उस समय उसे बहुत थोड़ा पानी (प्रायः गरम किया हुआ) बड़ी मुश्किल से दिया जाता है। यह अन्याय और निर्दयता है। जिस समय तीव्र ज्वर शरीर को तपा रहा हो; ताप के कारण मुख और जिह्वा सूखी जाती हो, उस समय शीतल जल पिलाने से लाभ के सिवाय कभी भी हानि नहीं हो सकती है।

कालरा (हैज़ा) रोग में जिस समय प्यास से रोगी का गला सूखा जाता हो उस समय ठंढा पानी पीने को देने से न केवल प्यास बुझती है वरन पेशाब भी आने लगता है। यदि रोगी को प्यास लगी हो और चिकित्सक ने पानी देना बन्द न किया हो तो उसे अवश्य पानी पीने को देना चाहिए। ज्वर की अधिकता में रोगी बार बार पानी माँगते हैं। ऐसे समय में पानी देने में कुछ हानि नहीं है। अधिक से अधिक उसे उलटी हो जा सकती है। ऐसे समय में बरफ़ की डली चूसने को या सोडावाटर देना बहुत फ़ायदा करता है। इससे प्यास भी बुझती है और उल्टी भी रुकती है।

पानी को उबाल कर पिलाना इसलिए अच्छा समझा जाता है कि

पानी में रहनेवाले कीड़े मर जाते हैं। ऐसे जल को ठंढा करके पिलाना अच्छा है; परन्तु ऐसा जल स्वाद-हीन हो जाता है और इससे प्यास दूर नहीं होती। यदि जल को औटा कर फिर अच्छी तरह से एक बर्तन से दूसरे बर्तन में उझाल कर; जिसमें औटाने के समय जल में से जो वायु का अंश निकल गया है उसमें फिर से आ जावे, किसी घड़े या सुराही में भर कर ठंढा होने पर पीने को देने से जल का स्वाद भी सुधर जाता है और उसमें के हानिकारक पदार्थ भी नष्ट हो जाते हैं। शुद्ध शीतल जल या साफ़ किया हुआ नल का पानी जो बड़े शहरों में आता है रोगी को पिलाने में कोई हानि नहीं है। रात के पिछले पहर रोगी को जल पिलाने की अपेक्षा सोडावाटर या लेमनेड देना अच्छा है। यदि इनका मिलना असम्भव हो तो जल दे सकते हैं। बहुतेरे लोग ख़ाली पेट पानी देना अच्छा नहीं समझते; ऐसों को मिश्री की एक डली खिला कर तब पानी पिलावे; परन्तु मिठाई से प्यास बढ़ती है।

जिस समय ज्वर का ताप बढ़ रहा हो; रोग की प्रबलता के कारण रोगी बेहोशी की बातें करने लगे या रोगी के सिर पर गर्मी चढ़ जावे, उस समय सिर को मुड़ाकर उस पर बर्फ़ रखनी चाहिए। साधारणतया रबड़ की एक थैली में बर्फ़ भर कर रोगी के सिर पर रक्खी जाती है। यह थैली बाज़ार में "आइस बैग" के नाम से बिकती है। बरफ़ भरते समय थोड़ा सा नमक डाल देने से थैली और भी ठंढी हो जाती है। थैली में बर्फ़ के बड़े बड़े टुकड़े रखने चाहिए। यदि "आइस बैग" न हो तो काग़ज़ में बर्फ़ लपेट कर प्रयोग करे और जब काग़ज़ के भीतर पानी जमा हो जाय तब उसे निकाल डाले। बरफ़ को कपड़े में लपेट कर भी काम में ला सकते हैं; और जब कपड़ा पिघली हुई बरफ़ के पानी से तर हो जाय तब उसे निचोड़ कर फिर काम में लाये।

यदि बर्फ़ न मिले तो ठंढे पानी में सिरका मिला कर कपड़े के दो टुकड़े उसमें भिगो दे; एक को निकाल कर सिर पर रक्खे और जब वह

गरम हो जाय तब उसको हटाकर पानी में भिगो दे, जिसमें कि वह ठंढा हो जाय और दूसरा निकाल कर सिर पर रक्खे, इसी प्रकार बराबर कपड़ों को बदलना चाहिए। रोगी के सिर के बालों को बड़ा रखना उचित नहीं है। जिस समय रोगी को १०३ दर्जे का बुखार हो उसके सिर पर बर्फ़ रखनी चाहिए। यदि रोगी को ताप से किसी प्रकार का कष्ट न प्रतीत होता हो तो बरफ़ देने की कोई आवश्यकता नहीं है। ताप के १०१ दर्जे पर आजाने पर बरफ़ बन्द कर देना चाहिए। हैज़ा और मियादी बुखार में (जिसमें किसी भी समय ज्वर नहीं उतरता है) बरफ़ का प्रयोग करना अत्यन्त आवश्यक है। बर्फ़ देने के लिए चिकित्सक की राय अवश्य ले लेनी चाहिए। बहुत से रोगों में, विशेष कर ज्वरों में, रोगी को नहलाना अच्छा होता है। कमरे के दरवाज़े बन्द करके गर्म पानी में तौलिया भिगोकर उससे शरीर के एक एक अंग को अँगोछ दे, और उसी समय दूसरा आदमी सूखे अँगोछे या तौलिये से उसे पोंछ कर सुखा दे। इसी प्रकार सारे शरीर को अँगोछना चाहिए। परन्तु इसके लिए चिकित्सक की आज्ञा ले लेनी चाहिए। जल में नमक मिलाकर स्नान कराना भी अच्छा है। यदि स्नान कराना उचित न समझा जाय तो ठंढे पानी से सिर को अँगोछ देने में कोई हानि नहीं है। जब किसी कारण से सिर भन्नाने लगे, गर्मी और उलझन मालूम पड़ने लगे, उस समय सिर को ठंढे पानी से धो डालना अति उत्तम है। सिर को ठंढा और पैरों को गरम रखना स्वास्थ्य के लिए लाभदायक है। सिर ठंढा रहने से नींद ख़ूब आती है। सिर को ठंढा करने के लिए तकिये पर मोमजामा बिछाकर रोगी का सिर सिरहाने की तरफ़ बढ़ा कर नीचे झुका ले और ठंढे पानी की धार उस पर छोड़े। सिर पर गिरा हुआ पानी एक बाल्टी या तसले में गिरना चाहिए, जिससे कमरे का फ़र्श गीला न होने पावे। सिर धोने के पीछे बालों को अच्छी तरह से सुखा देना चाहिए। स्त्रियों के बालों को हाथों से निचोड़ कर तब सुखाना चाहिए।

कुल्ली कराना—रोगी के मुँह से प्रायः बदबू आने लग जाती है। रोग पुराना पड़ जाने पर तो मुँह भीतर से भी बहुत गंदा हो जाता है और जीभ पर भी बहुत मैल जमा हो जाती है। इसलिए रोज़ कुल्ली कराना बहुत अच्छा है। इस काम के लिए गरम जल का व्यवहार करना चाहिए; दाँतों और जीभ के ऊपर की मैल को जहाँ तक हो; बग़ैर रोगी को कष्ट पहुँचाये हुए साफ़ कर देना चाहिए। सवेरे मुँह धुला कर और कुल्ली कराकर तब दवा पिलानी चाहिए। खाना खाने के पीछे भी अच्छी तरह कुल्ली करा दें; जिसमें खाने के टुकड़े दाँत और मसूड़ों के बीच में जमा न होने पावें क्योंकि ऐसा होने से मसूड़ों में मवाद पड़ कर दाँतों में टीस, पानी लगना इत्यादि तकलीफ़ होने लगती हैं। मुँह का स्वाद बिगड़ रहा हो, तो दिन में कई बार कुल्ली करानी चाहिए।

रोगी को उठाना बैठाना—बहुधा देखा गया है कि एक ही दिन के ज्वर में रोगी ऐसा कमज़ोर हो जाता है कि बिना किसी दूसरे के सहारे उसका बिस्तर से उठना कठिन हो जाता है। रोगी को बिना सहारा दिये पाख़ाने पेशाब के लिए नहीं जाने देना चाहिए। क्योंकि रोग के प्रभाव से हृदय दुर्बल हो जाता है। अनेक रोगियों की हृदय की दुर्बलता के कारण बिस्तर से उठने की चेष्टा करते ही हार्ट फ़ेलियर से मृत्यु हो गई है।

इस कारण दुर्बल रोगियों को सहारा देकर उठाना चाहिए। यदि बैठाने की आवश्यकता हो तो पीठ के पीछे और दोनों बग़ल तकिये लगा देना चाहिए। बिना किसी सहारे के उसे कभी न बैठने दे। रोगी बिस्तर से हाथ पैर लटका कर भी न सोने पावे। इससे उस अंग के रक्त-प्रवाह में बाधा पड़ती है।

नींद लाना—नींद का आना अच्छे होने की निशानी है। रोगी को नींद लाने के लिए बड़ा यत्न करना चाहिए। ओषधि द्वारा नींद

लाना अच्छा नहीं है। नींद लाने के लिए रोगी के कमरे में सन्नाटा होना चाहिए। दीपक को हटा देना या उसकी ज्योति को मन्द कर देना चाहिए और उसे ऐसे स्थान पर रखना चाहिए जिसमें रोगी की आँख पर उसकी चमक न पड़ने पावे। रोगी के सिर पर गरमी के दिनों में पंखा करना चाहिए। सर्दी के दिनों में कम्बल या रज़ाई से उसे गरम रखना चाहिए।

बिस्तर बदलना—जब रोगी के नीचे का बिस्तर बदलना हो तो उसको खाट की एक पाटी की तरफ़ करवट लिटा देना चाहिए; और मैली चादर को लम्बाई में लपेट कर रोगी के शरीर के पास छोड़कर दूसरी साफ़ चादर लम्बाई में आधी तह करके उसके लिपटे हुए हिस्से को रोगी के शरीर के पास छोड़ देना चाहिए; फिर खुली हुई चादर को ख़ाली जगह में बिछा कर, रोगी को करवट बदला कर बिछी हुई नई चादर पर ले आवे, और मैली चादर दूर कर नई चादर का लिपटा हुआ हिस्सा खोलकर बिछा दे। (देखो चित्र नं० ६) यदि रोगी उठ सकता हो तो उसे उठा कर पहले साफ़ चादर को सिरहाने की तरफ़ से तह कर उसकी जगह पर नई चादर आधी दूर बिछा दे। फिर रोगी को लिटा कर पैरों की तरफ़ वाली मैली चादर आधी उठाकर साफ़ चादर का लपेटा हुआ भाग भी खोल कर बिछा दे।

ओषधि या भोजन कराने के लिए यदि रोगी को उठाना हो तो गर्दन और कन्धों के पीछे बाँह का सहारा देकर उठावे। गर्दन सीधी रखनी चाहिए क्योंकि बहुत झुकी रहने से निगलने में तकलीफ़ होती है। टोंटीदार बर्तन से रोगी को खाना-पीना देना अच्छा है। बाज़ार में इस काम के लिए चीनी का फ़ीडिंग कप (टोंटीदार प्याला) मिलता है। यह गरम पानी से बहुत जल्दी साफ़ किया जा सकता है और सस्ता भी होता है। यदि गिलास या कटोरे से खिलाना-पिलाना हो तो उसे थोड़ा ख़ाली रखना चाहिए जिसमें बिस्तर पर कुछ छलक कर न

गिरने पावे। बहुत दिनों तक बिस्तर पर पड़े रहने से चूतड़, पीठ और एड़ी में बिस्तर की रगड़ से घाव हो जाते हैं। परिचारक को चाहिए कि प्रतिदिन इन स्थानों को ध्यान से देखे; यदि इन स्थानों पर लाली जान पड़े तो चिकित्सक को इस बात की ख़बर कर दे। बिस्तर की सिकुड़न मिटा कर उसे प्रतिदिन झाड़ देना चाहिए। रोगी के कपड़े जहाँ तक हों साफ़ रहें। मैले कपड़ों से ज्वर के उतरने में विलम्ब होता है। स्वस्थ मनुष्य के शरीर से श्वास और पसीने द्वारा लगभग दो सेर जल चौबीस घंटे में निकलता है और बीमारी की हालत में यह और भी बढ़ जाता है। इस जल में शरीर का मल मिला रहता है। इसमें बहुत जल्द दुर्गन्धि पैदा हो जाती है। यह जल रोगी के कपड़ों में प्रवेश करके रोग बढ़ाने का कारण होता है। इसका स्मरण करके रोगी के शरीर से लगे हुए कपड़े और बिस्तर की चादर को रोज़ नहीं तो दूसरे चौथे बदलना या धूप में तीन चार घंटे के लिए सुखाना चाहिए। बरसात के दिनों में जलती हुई आग के सामने सुखला कर गरम कर लेना चाहिए। रोगी की चारपाई के ऊपर कोई चादर, रज़ाई या कम्बल न झाड़ने पावे, यदि झाड़ना हो तो कमरे के बाहर झाड़ी जावे जिसमें गर्दा इत्यादि रोगी की चारपाई पर न गिर कर बाहर गिरे।

रोग-मुक्त की सेवा---रोग के दूर होने ही रोगी की तरफ़ से निश्चिन्त न हो जाना चाहिए। रोग का फिर से भी दौरा हो सकता है; यह विचार कर रोग-मुक्त की सेवा ध्यानपूर्वक करनी चाहिए।

रोग दूर होने पर जिस समय केवल निर्बलता ही रह जाती है उस समय पूरी आरोग्यता प्राप्त कराने के लिए बहुत-सी बातों का ध्यान रखना पड़ता है।

खान-पान—रोग के दूर होने पर रोगी को भूख बढ़ जाती है; उस समय यही इच्छा होती है कि क्या पावें और खालें; रोगी छोटे बच्चों की तरह हो जाता है किन्तु आमाशय में इतनी शक्ति नहीं होती है कि

सब प्रकार का बहुत-सा खाना पचा सके। ऐसी हालत में सट-पट या पेट भर खा लेने से अपच के कारण खट्टी या सड़ी डकारें, सिर में दर्द, पेट में अफरन, ज्वर और दस्त तक होने लग सकते हैं। इसलिए बड़ी सावधानी से हलका भोजन कई बार थोड़ा थोड़ा करके देना चाहिए। साग्दाना, मूँग की दाल का जूस या मूँग की पतली खिचड़ी पचा लेने के बाद दाल रोटी इत्यादि देना चाहिए। रोगी के पहिनने के कपड़े गरम और ढीले होने चाहिए, उसे सर्दी लगने से बचाना ज़रूरी है क्योंकि असावधानी से रोग का फिर से दौरा हो सकता है। हाथ-पैर ठंढे न रहने चाहिए। रोग-मुक्त के लिए निद्रा अत्यन्त आवश्यक है। उसे प्रति-दिन कम से कम ७ या ८ घंटे सोना और खाना खाने के पीछे कुछ देर आराम कराना चाहिए।

आमोद-प्रमोद का रोग-मुक्त पर अच्छा प्रभाव होता है। सचित्र पुस्तकें देखना, गाना-बजाना और क़िस्से-कहानी सुनना, दूसरों को काम करते देखना, मनोरंजक पुस्तकें पढ़ना रोग-मुक्त के लिए अच्छा है।

रोग दूर होने पर रोगी का कमरा बदल देना अच्छा है। यदि कमरा न बदला जा सके तो कम से कम चारपाई का स्थान, बिस्तर और कमरे में रक्खी हुई वस्तुओं की सजावट का ढँग बदल देना चाहिए। रोग की दशा में व्यवहार की हुई वस्तुओं को भी जहाँ तक हो हटा देना चाहिए। रोगी का जो अङ्ग विशेष करके पीड़ित रहा हो, रोग-मुक्त होने पर उसकी विशेष प्रकार से रक्षा करनी चाहिए।

खाँसी और कंठ-संबन्धी रोगों में सर्दी से विशेष प्रकार से बचाव कराना चाहिए। पेट की बीमारियों में खाने-पीने की सावधानी रखनी चाहिए।

तीसरा अध्याय

औषधि-प्रकरण

साधारण शिक्षा, नापने की विधि, गोली, चूर्ण, गरारा, तथा भपारे का देना, आँख मे दवाई डालना, मालिश करना, पुलटिस बाँधना, राई की पुलटिस, कोयले की पुलटिस, प्लास्टर, सूखा सेक, तर सेक, स्पंज करना, भाफ लेना, एनीमा देना इत्यादि।

चिकित्सक के आज्ञानुसार ओषधियों का ठीक ठीक समय पर देना परिचारक का सबसे बड़ा धर्म है। ओषधि की शीशी पर रोगी का नाम, तारीख़ और ओषधि की मात्रा और सेवन-विधि लिखी रहती है। विषैली और बाहर लगानेवाली ओषधियों के ऊपर इस बात की सूचना लगी रहती है। ओषधि की शीशी पर जो कुछ लिखा हो उसको अच्छी तरह से समझ कर तब रोगी को पिलाना चाहिए। ऐसा न करने से संभव है कि ओषधि ठीक मात्रा में न पहुँचे, या विषैली ओषधि उचित मात्रा से अधिक पिला दी जाय या बाहर लगाने की विषैली ओषधि भूल से पिला दी जाय जिसका परिणाम रोगी की मृत्यु तक हो सकता है। शीशी को हिलाकर ओषधि की मात्रा को गिलास में उलटना चाहिए। शीशी के काग़ज़ को जिस पर सेवन-विधि लिखी रहती है ओषधि निकालने के समय ऊपर की ओर रक्खे जिससे

कि उस पर ओषधि का धब्बा न पड़ने पावे; शीशी का कार्क बन्द रखना चाहिए। ऐसा न करने से बहुत-सी ओषधियाँ उड़ जाती हैं और उनका गुण जाता रहता है। बहुधा रोगी दवाई पीने से घबड़ाते हैं। परिचारक का धर्म है कि उन्हें दृढ़ता और नम्रता से समझा बुझा कर ओषधि पिला दे। दवाई पिलाने में ज़बरदस्ती नहीं करनी चाहिए। ज़बरदस्ती करने से या तो रोगी दवा थूँक देता है या उल्टी कर देता है। यदि एक बार ज़बरदस्ती से पी भी गया तो दूसरी बार पिलाने में कठिनाई पड़ती है। रोगी को क्रोध आजाने से, या उस पर डाँट-डपट करके कोई काम उसकी इच्छा के विरुद्ध करने से उसके कमज़ोर हृदय (दिल) और दिमाग़ पर बुरा असर पड़ता है।

पानी की तरह से पतली और कई ओषधियों के मेल से बनी हुई दवाई को अँगरेज़ी में मिक्श्चर कहते हैं। इनको नापने के लिए नीचे लिखा पैमाना याद रखना चाहिए—

६० बूँद (मिनम) का	१ ड्राम
८ ड्राम का	१ औंस
२० औंस का	१ पाइंट

दो प्रकार के नापने के ग्लास होते हैं। एक से बूँदें नापी जाती हैं, इसे मिनिम मेज़र कहते हैं; और दूसरे से औंस; इसे औंस मेज़र कहते हैं। ग्लास में इनकी लकीरें और अङ्क बने रहते हैं। इनका पढ़ना सहज है। कोई कोई दवाई एक ही ख़ुराक में दी जाती है। जैसे दस्त लाने के लिए कैस्टर आयल अर्थात् रेंड़ी का तेल। कैस्टर आयल को पिपरमैन्ट के पानी या दूध में छोड़ कर पिलाना चाहिए।

गोलियाँ एक एक करके खिलानी चाहिए। उन्हें जीभ पर रख कर पानी से निगला देना चाहिए। चूर्ण को जीभ पर रख कर पानी से निगला देना चाहिए। और यदि मात्रा बड़ी हो तो थोड़े से पानी में घोल कर पिला देना चाहिए।

गरारा उन ओषधियों को कहते हैं जिनसे मुख और कंठ-सम्बन्धी रोगों में जल मिला कर कुल्ली कराई जाती है। आधी छटाँक ओषधि मिले जल को मुख में देकर सिर पीछे को झुकाकर श्वास द्वारा गररर शब्द कराते हैं (ओषधि को निगलने नहीं देना चाहिए) थोड़ी देर तक ऐसा करने के बाद उसे थूक दे; कई बार इसी प्रकार से कराना चाहिए।

आँख में दवाई डालना—इस काम के लिए शीशे का ड्रापर होता है। यदि वह न हो तो विलायती रुई या छोटे से साफ़ कपड़े के टुकड़े को भी दवा में भिगो कर दो बूँद दवा आँख की भीतरी कोर के गढ़े में डाल देनी चाहिए और कुछ देर तक रोगी के मुख को ऊपर रक्खे जिससे दवा आँख में फैल जाय।

मालिश—मालिश की दवाइयों को अँगरेज़ी में लिनीमेन्ट कहते हैं। ये पनीली होती हैं। दवाई को हथेली में लेकर रोगी के अंग पर धीरे धीरे मालिश करनी चाहिए जब तक कि वह खाल पर सूख न जावे। बहुत-सी दवाइयाँ बहुत तेज़ होती हैं; उनको आँख में न लगने देना चाहिए। मालिश करनेवाले को मालिश करने के बाद हाथों को साबुन लगाकर अच्छी तरह से साफ़ कर डालना चाहिए।

पुल्टिस—तर सेंक पहुँचाने के लिए पुल्टिस से सेंक की जाती है। इससे दर्द और तनावट दूर होकर सूजन घट जाती है। बहुधा पीप पड़ना भी रुक जाता है। यदि मवाद पड़ गई हो तो उसको बाहर लाने में भी यह सहायता देती है। पुल्टिस जल्दी जल्दी बदलनी चाहिए क्योंकि ठंढी, कड़ी और सूखी पुल्टिस से कुछ भी लाभ नहीं होता। पुल्टिस में दो तीन घंटे से अधिक गर्मी नहीं रहती। पुल्टिस की तह मोटी होनी चाहिए। किसी मोटे कपड़े या पुरानी फ़लालैन पर फैलाकर इसे लगाना चाहिए। कपड़े के किनारे मोड़ देने चाहिए; जिसमें वह अपनी जगह पर ठहरी रहे; लगाने और उतारने में आराम रहे और

गर्मी अधिक देर तक ठहरे। पुल्टिस बदलते समय पुरानी को हटा कर उस जगह को पोंछ कर ठंढ से बचाने के लिए ढँक दे। यदि घाव हो तो उसे धो डाले। पुल्टिस ख़ूब गरम गरम लगानी चाहिए, परन्तु इतनी गरम भी न हो कि चमड़ा जल जाय, इस बात का ध्यान विशेष कर बच्चों के लिए रखना चाहिए क्योंकि उनकी खाल बहुत नर्म होती है। एक हलका परत कपड़े का बिछाकर तब पुल्टिस लगाना अच्छा है। एक बार व्यवहार की हुई पुल्टिस को दूसरी बार गरम करके व्यवहार न करना चाहिए। स्तन या नाभी के चारों तरफ़ पुल्टिस लगाने की ज़रूरत हो तो पुल्टिस के अलग अलग चार हिस्से तैयार कर आवश्यकतानुसार छेद करके नाभी या स्तन के चारों ओर लगाना चाहिए।

मैदे की पुल्टिस बनाने के लिए पहले मैदे को ठंढे पानी में पतला घोल कर तब आग पर चढ़ा देना चाहिए, और जब तक वह पक कर गाढ़ा न हो जाय तब तक किसी लकड़ी की डंडी या चिमचे से उसे चलाते रहना चाहिए; जिसमें गाँठें न पड़ने पावें। फिर उसे अग्नि से उतार कर एक मोटे कपड़े, फ़लालैन या पुराने कम्बल के टुकड़े पर फैला कर काम में लाना चाहिए। यह पुल्टिस भी दर्द दूर करने और देर तक गर्मी रखनेवाली है।

अलसी (तीसी) की पुल्टिस—अलसी को कूट कर ठंढे पानी में घोल कर मैदे की पुल्टिस की तरह चलाते रहना चाहिए जिसमें न तो वह जलने पावे और न गाँठें ही पड़ने पावें। अच्छी तरह से पक कर गाढ़ी हो जाने पर अग्नि से उतार कर किसी कपड़े पर मोटी तह में फैला कर काम में लाना चाहिए। पुल्टिस के तैयार हो जाने पर उसमें थोड़ा सा रेंड़ी का तेल मिला देना अच्छा है।

गरम पानी और फ़लालैन से सेंक (फोमेन्टेशन)—किसी मोटे कपड़े, फ़लालैन या लिन्ट के एक टुकड़े को एक गमछे में रखकर

खौलते हुए पानी में भिगो देवे और गमले के दोनों सिरों को बल देकर सब पानी निचोड़ डाले। निचुड़ जाने पर कपड़े, फ़लालैन या लिन्ट के टुकड़े को गमले से निकाल कर दर्द की जगह पर रख कर सेंक करे। ठंढा हो जाने पर दूसरा बदल दे। दस मिनट तक इस प्रकार सेंक करके फिर उसे उसी स्थान पर रुई रखकर बाँध दे। चिकित्सक के आज्ञानुसार चार चार घंटे पर सेंक करनी चाहिए।

ऐन्टी फ़्लेजेस्टीन की सेंक—यह एक प्रकार की विलायती पुल्टिस है। यह डब्बे में बन्द होती है। निमोनिया की बीमारी में इसका पलस्तर छाती पर लगाया जाता है। और भी कई प्रकार के रोग जैसे गलसुए, स्तन या किसी अङ्ग में दर्द और सूजन में भी यह इस्तेमाल किया जाता है। इसकी सेंक बारह घंटे रहती है। इसको गरम करने और लगाने की विधि इसके डिब्बे पर लिखी होती है।

टरपेन्टाइन स्टूप्स—यदि पेट सेंकना हो तो फ़लालैन, मोटे कपड़े या लिन्ट पर २०, ३० बूँद तारपीन का तेल छिड़क कर गरम पानी से सेंक करे जब सेंक हो चुके तो उस स्थान को सुखा कर सूखा कपड़ा या फ़लालैन या लिन्ट की पट्टी रखकर बाँध दे।

कोयले की पुल्टिस—बदबूदार पीप से भरे हुए घावों पर कोयले की पुल्टिस बड़ा फ़ायदा करती है। साधारण पुल्टिस में पिसा हुआ लकड़ी का कोयला मिलाकर उसे किसी मोटे कपड़े पर मोटी तह में फैलाकर कोयले को महीन पीस कर उस पर उसका चूर्ण छिड़क कर काम में लावे।

राई का पलस्तर—दर्द दूर करने और भीतरी दर्द खींचने के लिए राई का पलस्तर लगाया जाता है। राई का चूर्ण लेकर ठंढे पानी में लेई सी बनावे और मोटे काग़ज़ पर आवश्यकतानुसार लंबाई चौड़ाई में फैला कर जिस स्थान पर लगाना हो लगा दे। दस मिनट तक उसको हाथ से दाबे रहे। इसके लगाने से चुनचुनाहट होती है और

वह जगह लाल पड़ जाती है। पलस्तर को उतार कर उस जगह को साफ़ कर दे। यदि पलस्तर के ऊपर पतली मारकीन की तह रख कर लगाया जाय तो फिर धोने या साफ करने की ज़रूरत नहीं रहती।

सूखी सेंक—फ़लालैन या किसी मोटे कपड़े के कई पर्त या रुई के पहल को कोयले पर गरम कर उससे सेंकते हैं। बालू या भूसी की पोटली बना कर भी सेंक की जाती है। ईंट को गरम करके फ़लालैन में लपेट कर सेंकना भी बहुत लाभदायक है। ईंट बहुत देर तक गरमी पहुँचाती है। बोतल में गरम पानी भर कर और उसे किसी कपड़े या तौलिया में लपेट कर भी सेंक करते हैं। इस काम के लिए रबड़ की थैली जिसे हाट वाटर बाटल (hot water bottle) कहते हैं बहुत अच्छी होती है।

बफारा लेना—खौलते हुए पानी में दवाई डाल कर भाफ साँस के साथ भीतर खींची जाती है। इसका सीधा उपाय यह है कि एक लोटे में खौलता हुआ पानी भर कर एक तौलिये को गोल कर लोटे के किनारों पर बाँध दे और रोगी से अपना मुख तौलिया पर रखकर दवा मिली हुई भाफ साँस के साथ खींचने को कहे।

पाखाना कराना—इसके लिए पीने की दस्तावर ओषधियों के अलावा गुदा-मार्ग से ओषधियाँ या ओषधि मिला गर्म जल के प्रविष्ट कराने से भी सुगमता से मल बाहर निकाला जा सकता है। ओषधियों द्वारा प्रत्येक रोग में ख़ास कर कमज़ोरी की हालत में पाखाना नहीं कराया जा सकता, दूसरे ओषधियों का प्रभाव सब पर एक सा नहीं होता कुछ पर केवल थोड़ी सी मात्रा में दस्तावर दवा देने से बहुत से दस्त आने लग जाते हैं और कुछ पर इसका कुछ भी प्रभाव नहीं होता, और तीसरे ओषधियों के देने और उनके असर होने में दो से बारह घंटे तक लग जाते हैं। किन्तु आगे लिखे हुए उपचारों से पाँच दस मिनट के अन्दर ही ओषधि का प्रभाव होकर घंटे दो घंटे के अंदर पेट हलका हो जाता है।

ग्लीसरीन सिरिंज और बत्ती (चित्र नं० ११)—यह एक शीशे की पिचकारी होती है; जिसका गुदा-मार्ग में प्रवेश करानेवाला भाग वल्कनाइट (कचकड़े) का बना होता है; जिसमें अन्दर टूट जाने का डर नहीं रहता। इसमें ग्लीसरीन या रेंड़ी का तेल भर कर और कचकड़े-वाले हिस्से पर वेसलीन या घी लगा कर रोगी को बाईं करवट लिटा कर दाहिने पैर के घुटने को मोड़ कर उसके पेट के पास लगा कर पिचकारी का वेसलीन या घी लगा हुआ भाग गुदा-मार्ग से अन्दर डाल कर पिचकारी का गट्टा दबाकर ओषधि अन्दर पहुँचा कर पिचकारी बाहर निकाल ली जाती है। यह क्रिया प्रायः छोटे बच्चों में की जाती है। ओषधि के प्रवेश कराते ही पाखाना मालूम होने लग जाता है। ओषधि का पूरा असर कराने के लिए एक कपड़े की गद्दी को पिचकारी के निकालते ही गुदा-मार्ग पर रख कर चूतड़ों के बीच में पाँच मिनट तक दबाये रखना चाहिए। इस क्रिया से केवल बड़ी आँतों का निचला भाग साफ़ होता है। बाज़ारों में ग्लीसरीन सपोज़िटरी (ग्लीसरीन की बत्तियाँ) मिलती है ये दो प्रकार की होती है एक छोटी बच्चा के लिए और दूसरी बड़ों के लिए। ऊपर लिखी हुई रीति से रोगी को लिटा कर गुदा-मार्ग पर घी या वेसलीन लगा कर यह अन्दर प्रविष्ट करा दी जाती है। इसको भी ऊपर लिखी विधि से पाँच मिनट तक अन्दर रोकने की कोशिश करनी चाहिए। हमारे देश में स्त्रियाँ बच्चों के पाखाना न होने पर साबुन की बत्ती या कपड़े की घी में डूबो हुई बत्ती या नमक की घिसी हुई डली को गुदा-मार्ग में प्रविष्ट करके पाखाना कराती हैं। इन सबका भी असर ग्लीसरीन की बत्ती सा होता है। लेकिन ग्लीसरीन की बत्ती इन सबसे उत्तम है।

एनीमा और डूश (चित्र नं० १२ और १३)—गुदा-मार्ग से जल मिली हुई ओषधियों के प्रविष्ट कराने को एनीमा कहते हैं। कुछ रोगों में जब कि ओषधि किन्हीं कारणों से मुख-मार्ग से नहीं दी जा सकती

उस समय कुछ ओषधियाँ गुदा-मार्ग से शरीर में प्रविष्ट की जाती हैं। एनीमा कई प्रकार के होते हैं। (१) दस्तावर, (२) अपान वायु निकालनेवाला, (३) कृमिनाशक, (४) पौष्टिक, (५) उत्तेजक और (६) शामक।

(१) **दस्तावर एनीमा**—एनीमा प्रायः चित्र नं० १२ के आकार की पिचकारी या चित्र नं० १३ के आकार के शीशे, टीन, या तामचीनी के डूशकैन और रबड़ की नली जिसमें वल्कनाइट का नल लगा होता है; द्वारा दिया जाता है। एनीमा सिरिंज रबड़ की होती हैं इनमें हिगिंसन सिरिंज सबसे उत्तम है। इसका एक सिरा छिलले बर्तन जिसमें साबुन मिला हुआ डेढ़ दो सेर गरम पानी होता है, डूबा रहता है। (देखो चित्र नं० १२) पिचकारी के रबड़ के गेंद सा बिचले हिस्से को कई बार दबा कर छोड़ने से उसमें पानी भर कर दूसरे सिरे से तेज़ धार से निकलने लगता है। इसके दूसरे सिरे को भीतर लगाने से पहले इस बात का निश्चय कर लेना चाहिए कि उसमें से कुल हवा निकल गई है और एनीमा देते समय पिचकारी को धीरे धीरे दबाना चाहिए। क्योंकि ज़ोर से दबाने से जल की धार का वेग आँतों में लगता है जिससे रोगी को तकलीफ़ होती है और वह प्रविष्ट किये हुए जल को अधिक देर तक नहीं रोक सकता। डूश द्वारा एनीमा देने में भी रबड़ की नली से हवा को पूरी तौर से निकाल डालना चाहिए। और ओषधि से भरे हुए डूशकैन को धीरे धीरे ऊपर उठाना चाहिए जिसमें कि उसका जल धीरे धीरे शरीर में प्रवेश करे। साधारणतया तीन चार फ़ीट की ऊँचाई पर डूशकैन को रख कर एनीमा दिया जाता है। रोगी को जैसा कि ग्लीसरीन सिरिंज के वर्णन में ऊपर बतलाया जा चुका है लिटाकर और उसी प्रकार से गुदा-मार्ग में प्रवेश करनेवाली नली पर वेसलीन या घी लगाकर प्रवेश कराना चाहिए। साधारण दस्तावर एनीमा साफ़्टसोप या किसी अच्छे साबुन को गरम पानी में घोल कर चिकित्सक की बतलाई हुई तादात में दिया जाता

है। साधारणतया बड़ों के लिए सेर डेढ़ सेर और १० वर्ष से कम उमर-वालों के लिए ४ तोला प्रतिवर्ष के हिसाब से साबुन मिले हुए गरम पानी का एनीमा दिया जाता है। एनीमे का जल शरीर की साधारण उष्णिमा से डेढ़ दो डिगरी ऊपर होना चाहिए क्योंकि रबड़ की नली द्वारा शरीर में पहुँचते पहुँचते वह कुछ ठंडा हो जाता है।

(२) अपान वायु निकालनेवाले एनीमे में साबुन और पानी के स्थान में, ढाई तोला तारपीन का तेल अरारोट के पके हुए डेढ पाव आध सेर पानी में अच्छी तरह से मिला कर दिया जाता है।

(३) कृमिनाशक एनीमे में तीन माशे साधारण नमक तीन पाव गरम पानी में मिलाकर या क़रीब आधपाव कासिया नामक ओषधि के गरम काढ़े का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार के एनीमा के देने से पहले पेट को साबुन और गरम पानी के एनीमा से साफ़ कर लेना चाहिए। कृमिनाशक पदार्थ के घोल को कम से कम २० मिनट तक पेट के अंदर अवश्य रोकना चाहिए। यह खास कर सफ़ेद सूत्राकार कृमि को मार कर बाहर निकालने के लिए प्रयुक्त किया जाता है।

(४) पौष्टिक एनीमा उन दशाओं में दिया जाता है जब रोगी मुख से खाना नहीं खा सकता है। ऐसा एनीमा देने के पहले पेट साबुन और पानी के एनीमा से साफ़ कर लिया जाता है फिर चिकित्सक के बतलाये हुए तरीक़े से खास प्रकार से बने हुए पौष्टिक पदार्थों को धीरे धीरे एनीमा द्वारा प्रविष्ट कराया जाता है।

(५) उत्तेजक एनीमा; अत्यन्त कमज़ोरी या बेहोशी की हालत अथवा बड़े आप्रेशनों के बाद दिया जाता है। इसमें अधिकतर नमक के क़रीब तीन पाव गरम घोल में पोर्ट वाइन या क़ाफ़ी मिलाकर चिकित्सक के आज्ञानुसार दी जाती है।

(६) शामक एनीमा पेट के दर्द और दस्तों की अधिकता को शान्त करने के लिए दिया जाता है। बड़ों के लिए छटाँक डेढ़ छटाँक और बच्चों के लिए दो ढाई तोला गरम अरारोट के पानी में चिकित्सक की बतलाई हुई तादात में टिंचर ओपियम जिसे लाडनम भी कहते हैं (यह अफ़ीम से तैयार किया जाता है) मिलाकर धीरे धीरे शीशे की ग्लीसरीन सिरिंज से गुदा-मार्ग से शरीर में प्रविष्ट किया जाता है।

चौथा अध्याय

रोगी के लिए पथ्य बनाने की विधि

रोगी के लिए पथ्य बनाने के समय परिचारक को इस बात का पूर्णतया ध्यान रखना चाहिए कि वह स्वादिष्ट भी हो परन्तु हानिकारक न हो। पथ्य में अधिक मसाला न डालना चाहिए क्योंकि इससे प्रायः अपच हो जाता है। भोज्य पदार्थ, पकाने के बर्तन, और स्थान स्वच्छ होना चाहिए। रोगी का पथ्य ढँक कर ऐसे स्थान पर रखना चाहिए जहाँ पर चूहे, बिल्ली, नेवले इत्यादि उसको जूठा न कर सकें। उसे खुला कभी नहीं छोड़ना चाहिए क्योंकि ऐसा न करने से धूल, मक्खी या चींटा चींटी पड़कर पथ्य दूषित हो जायगा।

साबूदाना—एक तोले के अन्दाज़ से साफ किये हुए साबूदाने को पानी से धोकर साफ़ कर ले, उसके बाद ढाई तीन पाव साफ़ पानी में डाल कर धीमी धीमी आँच में पकावें, जब उबलने लगे तब चिम्मच या कलछी से चलाता रहे जिसमें कि साबूदाने की गाँठें न पड़ने पावें। पन्द्रह बीस मिनट तक उबलने के बाद उतार कर और ठंढा हो जाने पर थोड़ी सी चीनी मिला कर रोगी को देना चाहिए। आवश्यकतानुसार इसमें दूध मिलाकर भी रोगी को खिलाया जा सकता है। साबूदाने में पानी की जगह दूध डाल कर पकाने से साबूदाने की खीर बनती है। यह पानी में पके हुए साबूदाने की अपेक्षा देर में हज़म होती है।

बार्ली—डब्बे में बन्द विलायती राबिन्सन्सबार्ली इसके लिए बहुत अच्छा होता है। एक तोले के लगभग (आधा औंस) बार्ली एक छटाँक ठंढे पानी में घोल कर उसे आध सेर के लगभग खौलते हुए पानी में थोड़ा थोड़ा डाल कर कलछी या चिम्मच से धीरे धीरे चलाता जावे, थोड़ा पतला रह जाने पर इसे उतार कर ठंढा कर, चीनी या मिश्री मिला कर रोगी को पिलाना चाहिए।

पर्ल बार्ली—एक बर्तन में सेर भर साफ़ पानी लेकर एक छटाँक के अन्दाज़ साफ़ पानी से धोये हुए पर्ल बार्ली को डाल कर आग पर पकावे। जब आध सेर पानी शेष रह जावे तब उतार कर छान कर काम में लावे। पकने के बाद बर्तन में काग़ज़ी निम्बू के छिलके डाल कर कुछ देर रख देने से यह सुस्वाद और सुगन्धित हो जाता है।

अरारोट—यह राबिन्सन्स बार्ली की तरह से पकाया जाता है। विलायती स्पीड्स अरारोट सबसे उत्तम है।

जौ का पानी—एक छटाँक छिलके उतारे हुए जौ एक सेर पानी में धीमी धीमी आँच पर पकावे; जब आध सेर पानी रह जावे, तब कुछ ठंढा हो जाने पर उन्हें मल कर छान ले। ठंढा हो जाने पर चीनी या मिश्री डाल कर रोगी को पिलावे। चावल का माँड़, खीलों का माँड़, और चिड़वों का माँड़ भी इसी प्रकार से तैयार किया जाता है।

अलसी (तीसी) की चाय—एक छटाँक साफ़ कुचली हुई अलसी को एक साफ़ बर्तन में रख कर उस पर आध सेर के लगभग उबलता हुआ पानी डाल कर बर्तन का मुख ढक कर एक घंटे तक गरम जगह पर रख दे, बाद में छान कर चीनी या मिश्री मिलाकर पिलावे। यह पेशाब की बीमारियों और स्त्रियों में दूध के कम उतरने में बहुत फ़ायदा करती है।

बेंजर्स फूड, मेलिन्स फूड, एलेनबरांज़ फूड और हार्लिक्स माल्टेड मिल्क—इन सबके बनाने की विधि इनके साथ में लिखी

रहती है। आवश्यकतानुसार इन्हें ताज़ा बनाना चाहिए। एक बार बनाकर रख देने से ये ख़राब हो जाते हैं।

दाल का जूस—मूँग या मसूर जिस दाल का जूस बनाना हो उसकी आधी छटाँक साफ़ दाल किसी साफ़ कपड़े के टुकड़े में बाँध कर एक सेर गरम पानी में डाल कर धीमी धीमी आँच में पकावे; जब पानी पाव भर के अंदाज़ में रह जावे तब उसको उतार ले, पोटली को मल कर उसमें का पानी निचोड़ पोटली को फेंक दे। इस पानी में थोड़ा सा नमक, कागज़ी नींबू का रस और अदरख डाल कर पिलाना चाहिए।

मांस का जूस—पाव भर साफ़ हड्डी युक्त छोटे बकरे के मुलायम मांस को दो सेर पानी में धीमी धीमी आँच पर पकाना चाहिए। जब आध सेर के अन्दाज़ पानी रह जावे तब मांस को अच्छी तरह से मल कर उसे एक साफ़ कपड़े से छान ले। उसमें माफ़िक का नमक डाल कर रोगी को देना चाहिए। मांस का जूस चार पाँच घंटे से ज़्यादा रखने से बिगड़ जाता है।

चोकर की रोटी—आवश्यकतानुसार चोकर को थोड़े से पानी में अच्छी तरह से गूँध कर थोड़ा सा पानी डाल कर भिगो कर एक घंटे तक रख देना चाहिए। भीग कर नरम हो जाने पर इसकी छोटी छोटी और पतली रोटियाँ बनानी चाहिए। यह बहुमूत्र (डाइबेटीज़) रोग में दी जाती है।

पाँचवाँ अध्याय

मानव-शरीर की रचना और अंगों के कार्य

रोगी की सेवा करनेवालों को रोग-सम्बन्धी लक्षणों का जानना अत्यन्त आवश्यक है। जिस समय रोगी इस योग्य नहीं रहता कि अपना दुख सुख स्वयं बतला सके उस समय चिकित्सक को रोग-सम्बन्धी सभी बातें रोगी की सेवा करनेवालों से पूछनी पड़ती हैं। इसलिए यहाँ पर मानव-शरीर-रचना-सम्बन्धी कुछ मोटी मोटी बातें लिखी जाती हैं, जिनकी जानकारी रोगों और उनके लक्षणों को समझने के लिए आवश्यक है।

मानव-शरीर की तुलना एक मशीन जैसे रेलगाड़ी के इञ्जिन से की जा सकती है। जिस प्रकार से इञ्जिन में ताज़ा कोयला पानी देने की, राख और इस्तेमाल किये हुए पदार्थों के निकालने की, सफ़ाई की और मोर्चा लगने से बचाने के लिए उसे चालू रखने की ज़रूरत होती है; उसी प्रकार शरीर को भी खाना-पानी देने, मल-मूत्रादि के त्याग, स्नान, दन्त-मञ्जन इत्यादि क्रियाओं-द्वारा स्वच्छ रखने और अङ्गों से काम लेते रहने की ज़रूरत है।

जिस प्रकार इञ्जिन के एक पुर्ज़े के बिगड़ जाने से उसके काम में रुकावट होने लगती है, उसी प्रकार से शरीर के किसी अङ्ग के रोग-ग्रसित होने से सम्पूर्ण शारीरिक कार्यों में बाधायें पड़ने लगती हैं। यहीं

तक ही नहीं बल्कि जिस प्रकार से इञ्जिन को ठीक करने के लिए एक चतुर मिस्त्री या इञ्जीनियर की ज़रूरत होती है, उसी प्रकार से रोगी शरीर को सुधारने के लिए एक चतुर चिकित्सक की जो अङ्ग-प्रत्यङ्ग के कार्यों से भले प्रकार जानकारी रखता हो, आवश्यकता होती है।

अस्थिपञ्जर—शरीर का ढाँचा या पञ्जर हड्डियों से बना हुआ है, जो एक दूसरे से जुड़ी होती हैं। हड्डियाँ शरीर को ठीक आकार में रखती हैं; उसका बोझ सँभालती हैं, और दिमाग़ (मस्तिष्क), दिल, हृदय और फ़ेफड़ा (फुप्फुस) आदि मर्म स्थानों को बाहरी आघात से बचाती हैं।

हड्डियाँ कई आकार की होती हैं। लम्बी, चिपटी, गोल और टेढ़ी। बहुत सी हड्डियाँ भीतर से पोली होती हैं; इनमें एक प्रकार की मुलायम वस्तु भरी होती है जिसे "मज्जा" कहते हैं। यदि हड्डियाँ पोली न हों तो शरीर बहुत भारी हो जावे और मनुष्य को चलने-फिरने में कष्ट होने लगे। मज्जा से रक्त के लाल कणों की उत्पत्ति होती है।

अस्थिपञ्जर के चार भाग हैं (१) शिर, (२) धड़, (३) हाथ, (४) पैर।

(१) शिर की हड्डियाँ—शिर में २२ हड्डियाँ होती हैं; ८ कपाल में और १४ चेहरे में। प्रत्येक कान के भीतरी भाग में तीन बहुत छोटी छोटी हड्डियाँ होती हैं।

(२) धड़ की हड्डियाँ—धड़ में कुल ६९ हड्डियाँ होती हैं। ३३ रीढ़ में जिन्हें रीढ़ की गुरियाँ कहते हैं। २४ पसलियों में, ६ छाती में, २ गले में जिन्हें हँसली कहते हैं; दो कन्धों में जिनको पखना या अंसा-फलक कहते हैं और दो हड्डियाँ कमर में होती हैं।

(३) हाथ की हड्डियाँ—हाथ में ३० हड्डियाँ होती हैं। १ बाहु में, २ कोहनी से कलाई तक में, ८ कलाई में, ५ हथेली में, १४ अँगुलियों में। दोनों हाथों में कुल मिला कर ६० हड्डियाँ होती हैं।

(४) पैर की हड्डियाँ—पैर में ३० हड्डियाँ होती हैं। १ जाँघ में, २ टाँग में, १ घुटने के जोड़ पर, ७ टखने में, ५ पौली में, १४ अँगुलियों में। दोनों पैरों में कुल मिलाकर ६० हड्डियाँ होती हैं।

कुल शरीर में इस प्रकार से (६५+६०+६०+२२+६) २१७ हड्डियाँ होती हैं।

शैशवकाल में बहुत-सी हड्डियाँ अलग अलग होती हैं परन्तु युवावस्था तक उनमें से कुछ इस प्रकार से जुड़ जाती हैं कि जोड़ का पता भी नहीं लगता। जैसे छाती की (उरफलक) हड्डी; छः हड्डियों के जोड़ से बनी है, लेकिन बड़ों में यह एक ही मालूम होती है।

सन्धियाँ (जोड़) और स्नायु

दो या अधिक हड्डियों के मिलने के स्थान को संधि या जोड़ कहते हैं। हड्डियों के उन सिरों पर जो संधि के बनाने में भाग लेते हैं; एक प्रकार की चिकनी कोमलास्थि चढ़ी होती है। इन हड्डियों के सिरों को बन्धक तंतु के बन्धन ठीक स्थान पर रखते हैं। यह हड्डी को केवल कुछ ही दशाओं में हिलने डुलने देकर इन्हें स्थानच्युत होने से बचाते हैं। इन बन्धक पाशों को स्नायु कहते हैं। जोड़ों में अंडे की सफ़ेदी की तरह का, संधि-तेल होता है, जिसके कारण हड्डियाँ एक दूसरे पर सुगमता से फिसल सकती हैं।

संधि दो प्रकार की होती है; अचल और चल। अचल संधियाँ विशेष कर कपोल की हड्डियों में होती हैं। चल संधियों के मुख्य दो भेद हैं।

(१) उदूखल और (२) संदंशाकार।

(१) उदूखल संधि में भाग लेनेवाली हड्डियों में से एक हड्डी प्रत्येक दिशा में बे रोक टोक घूम सकती है, जैसे कंधे का जोड़ इसमें भुजा की

हड्डी आगे पीछे, ऊपर नीचे, दाहिने बाँयें हर एक दिशा में घूम सकती है, कूल्हे का जोड़ भी इसी प्रकार का है।

(२) संदंशाकार संधि में केवल ऊपर नीचे या आगे और पीछे दो ही दिशा में; जोड़ में भाग लेनेवाली हड्डियाँ हिलडुल सकती हैं। इस प्रकार के जोड़ों का उदाहरण हाथ की टेहुनी तथा पैर का घुटना है।

मांसपेशियाँ (पुट्ठे)

संधियों और अङ्गों का सञ्चालन मांसपेशियों द्वारा होता है, जिसे साधारण भाषा में गोश्त के टुकड़े या पुट्ठे कहते हैं। शरीर भर में लगभग ५०० मांसपेशियाँ हैं। इनका आकार इनके कार्य के अनुसार होता है।

मांसपेशियाँ दो प्रकार की होती हैं। ऐच्छिक और अनैच्छिक। ऐच्छिक उन पेशियों को कहते हैं जो हमारी इच्छा के अधीन हैं; जैसे जब हमारी इच्छा घुटने या कूल्हे पर अपना पैर मोड़ने या मुड़े हुए पैर को सीधा करने की होती है तब मोड़ने और सीधा करनेवाली पेशियों-द्वारा यह काम होता है।

हमारी इच्छा न होने से वे निश्चल रहती हैं। इस प्रकार की पेशियों का एक सिरा एक और दूसरा सिरा दूसरी हड्डी पर लगा होता है। प्रायः इन दोनों सिरों के बीच में एक जोड़ रहता है। जिसका परिणाम यह होता है कि पेशी के सिकुड़ने से दोनों हड्डियाँ जिन पर वह लगी होती है एक दूसरे के पास आती हैं। जैसे भुजा के सामने की द्विशिरस्का नामक मांसपेशी का एक सिरा तो पखने या अंसाफलक से लगा होता है, और दूसरा सिरा बाँह में कोहनी के जोड़ के पास लगा होता है। जब यह संकुचित होती है तब कोहनी को मोड़ती है और बाँह को ऊपर की तरफ़ उठाती है।

कंडरा—सफ़ेद चमकीले चिमड़े बन्धन जो कि मांसपेशियों को हड्डियों से बाँधते हैं कंडरा कहलाते हैं।

अनैच्छिक मांसपेशियाँ हमारी इच्छा की राह न देखकर अपना कार्य किया करती हैं। छाती में दिल का धड़कना, साँस का लेना और भोजन की पाचन-क्रिया इत्यादि सब कार्य अनैच्छिक पेशियों-द्वारा होते हैं। ये अपना कार्य निद्रा और बेहोशी की हालत में भी करती रहती हैं।

आँतों की अनैच्छिक मांसपेशियों-द्वारा भोजन का अंश पाचन-क्रिया के समय एक सिरे से दूसरे सिरे को जाता है।

हृदय की अनैच्छिक मांसपेशियों की सूक्ष्म रचना विशेष प्रकार की होती है।

दाँत—इनकी रचना हड्डियों से भिन्न होती है। दाँतों के तीन मुख्य भाग होते हैं। सबसे ऊपर एक अत्यन्त कठोर सफ़ेद चिकना मोटा परत होता है जिसे इनामेल कहते हैं। दाँत का भाग जो बाहर दिखाई देता है इसी से मढ़ा होता है। इसके भीतर एक परत दन्तीन का होता है। इसके अन्दर दंत कोटर या पल्प कैविटी होती है, जिसमें सूक्ष्म रक्तनालिकाओं और ज्ञानतन्तुओं का एक जाल फैला होता है। दाँतों का पोषण इन्हीं रक्त-नालिकाओं-द्वारा होता है।

दाँतों में पानी लगना, टीस उठना, दर्द इत्यादि ज्ञान-तन्तुओं के द्वारा मालूम होता है।

दाँत दो प्रकार के होते हैं। **अस्थिर** या दूध के दाँत, यह छः महीने की अवस्था से निकलने लगते हैं। इनमें से अधिकांश ५ या ६ वर्ष की आयु तक गिर जाते हैं। दूध के दाँत २० होते हैं।

स्थिर या अन्न के दाँत, सब मिला कर ३२ होते हैं। सबसे किनारे वाली चार दाढ़ें १८ या २० वर्ष की अवस्था के लगभग या इससे भी देर में निकलती हैं, इन्हें "अक़्ल की दाढ़" कहते हैं।

पाचन-संस्थान—जब कोई वस्तु खाई जाती है तब पहले उसे दाँत पीस कर टुकड़े टुकड़े कर डालते हैं; और साथ ही मुख की लार या थूक से भले प्रकार मिलकर वह गले से भोजन-नाल द्वारा आमाशय (पेट) में पहुँचता है। खाने को मुख में इधर-उधर दाँतों के नीचे ठेलने का काम जीभ करती है।

जीभ—इसके तीन मुख्य कार्य हैं। (१) भोजन को मुख में चारों तरफ़ फिराना और दाँतों के नीचे ठेलते रहना, (२) भोजन का स्वाद जैसे खट्टा, मीठा, नमकीन, तीता इत्यादि बतलाना और (३) बोलना। जीभ मांस की पेशियों से बनी है। ये पेशियाँ इतनी अधिक और इतने प्रकार की होती हैं कि इनसे जीभ हर तरफ़ घूम सकती है। मुख की भीतरी सतह पतली झिल्ली के सदृश होती है। जीभ के नीचे छोटी छोटी ग्रन्थियाँ होती हैं जो लार बनाकर मुख में पहुँचाती हैं। लार बनानेवाली मुख्य छः ग्रन्थियाँ हैं। प्रत्येक कान के सामने निचली दाढ़ के जोड़ पर कनपटी के नीचे एक ग्रन्थि होती है जिसे "कर्णमूलग्रन्थि" कहते हैं। यह ग्रन्थि "कनगुर" या "गलसुआ" नामक रोग में सूज जाती है। जबड़े के नीचे दोनों तरफ़ भी एक एक लार बनानेवाली दो ग्रन्थियाँ होती हैं। जीभ के नीचे भी दो ग्रन्थियाँ होती हैं; जीभ को उलटने से ये दिखलाई पड़ती हैं। लार का कार्य भोजन को तर करके उसे कंठ से नीचे फिसला कर भोजन नाल-द्वारा आमाशय में जाने में सहायता देना है। और भोजन के स्टार्च (अरारोट) सदृश अंश को एक प्रकार की शक्कर में बदल कर हज़म करना है।

भोजन को देर तक चबाना चाहिए, जिसमें वह अच्छी तरह से महीन हो जावे और उसमें लार भले प्रकार से मिल जावे। दाँतों से पिसा और लार से मिला हुआ भोजन; एक नली द्वारा जिसको 'भोजन-नाल' कहते हैं, आमाशय में जाता है। (चित्र नं० १५) भोजन-नाल कंठ से शुरू होता है।

कंठ में कई मार्ग मिलते हैं। एक मार्ग का कान के बिचले भाग से संबन्ध है, दूसरे का नाक से, तीसरे का मुख से, चौथे का श्वास-नाल-द्वारा फेफड़ों से, पाँचवें का भोजन-नाल-द्वारा आमाशय (पेट) से सम्बन्ध है।

भोजन निगलने के समय सब मार्ग बन्द हो जाते हैं; केवल मुख के रास्ते से आकर भोजन-नाल के द्वारा आमाशय में जाने का मार्ग खुला रहता है। कभी कभी असावधानी से भोजन निगलते समय फेफड़ोंवाला रास्ता भी खुला रह जाता है और भोजन का कुछ अंश उसमें जाने लगता है; उस समय फेफड़े बलपूर्वक उसे बाहर निकालने की कोशिश करते हैं; जिससे बहुत ज़ोर से खाँसी आती है और जब तक वह रास्ता साफ़ होकर बन्द नहीं हो जाता तब तक चैन नहीं पड़ती है। इसे "उल्यू" जाना कहते हैं।

आमाशय (पेट) यह एक मांस की थैली है जिसका आकार भिश्तियों की मशक-सा होता है। इसकी भीतरी सतह की झिल्ली एक प्रकार का पाचक रस बनाया करती है। इसकी मांसपेशियों के संकुचन से भोजन में पाचक रस भले प्रकार से मिल जाता है। इस रस के प्रभाव से भोजन एक गाढ़े तरल पदार्थ के रूप में हो जाता है। आमाशय के दूसरे सिरे पर एक दरवाज़ा होता है, जो कि आमाशय-रस के भोजन पर अच्छी तरह से प्रभाव न होने तक बन्द रहता है। आमाशय-रस की क्रिया के समाप्त होते ही यह द्वार खुल जाता है और आमाशय-रस-द्वारा परिवर्तित भोजन एक दूसरी नली में चला जाता है, जिसका आकार घोड़े की नाल या अँगरेजी के C अक्षर-सा होता है। इसको डियडिनम या ग्रहणी कहते हैं। यह नली १२ इंच या १६ अंगुल के लगभग लंबी होती है। इस स्थान पर भोजन में दो प्रकार के रस और मिलते हैं एक अग्नेय रस और दूसरा पित्त।

आमाशय के नीचे एक लंबा फरसे के आकार का अंग होता है।

इसे अग्नाशय कहते हैं। इसमें से अग्नेय रस निकलकर एक नली द्वारा ग्रहणी में पहुँचता है।

पित्त एक प्रकार का खट्टा, कड़ुआ रस है जो कलेजे (जिगर यकृत) में बनता है। जिगर पेट में दाहिनी ओर पसलियों के नीचे होता है, इसके कार्यों में से एक पित्त का बनाना भी है। यह पित्त एक छोटी सी थैली, जिसे "पित्ताशय" कहते हैं, में जमा होता रहता है।

जिस समय आमाशय-द्वारा परिवर्तित भोजन ग्रहणी में आता है उस समय इस थैली में संकुचन होकर पित्त एक नालिका के द्वारा ग्रहणी में पहुँच जाता है। जब पित्त अधिक बनता है तब पित्त-संबन्धी रोग होने लगते हैं। और जब किसी कारण से पित्त-नालिका बन्द हो जाती है या किसी कारण से पित्त रक्त में मिल जाता है, तब नेत्र और शरीर पीला पड़ जाता है और मूत्र पीले रंग या रक्त वर्ण का होने लगता है। इसे "कमलपित्त" या "काँवर" रोग कहते हैं। पित्त के अभाव में पाखाना सफ़ेद मटीले रंग का बदबूदार होने लगता है। किन्हीं कारणों से पित्ताशय में पित्त की पथरी बन जाती है जो कि पित्ताशय के संकुचन होने पर कभी कभी पित्त-नालिका-द्वारा ग्रहणी में पित्त-रस के साथ जाने की कोशिश करती है इससे पित्त-नली छिलने लगती है; जिससे अत्यन्त तीव्र वेदना होती है। इसे बिलियरी कालिक कहते हैं। यह वेदना पित्त की पथरी के पित्ताशय में लौट आने या ग्रहणी में पहुँच जाने पर शांत होती है।

दोनों प्रकार के रसों के मिलने से भोजन का शेष अंश और भी पच जाता है। ग्रहणी से निकल कर यह छोटी आँतों में पहुँचता है।

छोटी आँत—यह एक २० फ़ीट के लगभग लम्बी नली है जो सर्पाकार लिपटी रहती है अर्थात् इसकी एक तह पर दूसरी तह पड़ी रहती है जिससे थोड़ी-सी जगह में यह सब समा जाती है। इसमें भी एक प्रकार का रस बनता है जिससे भोजन का अंश और भी पतला होकर आँतों

द्वारा सोखने के योग्य हो जाता है। इस नली की मांसपेशियाँ इस प्रकार से फैलती सिकुड़ती रहती हैं कि उनकी क्रिया से पचा हुआ भोजन का द्राव उसके ऊपरी सिरे से धीरे धीरे निचले सिरे पर पहुँच जाता है। आँतों के इतनी लम्बी होने का कारण यह है कि भोजन का द्राव देर तक उनमें रहे और उसमें से पोषक अंश खिच कर रक्त में पहुँच जावे।

बड़ी आँतें—छोटी आँतों के निचले सिरे से बड़ी आँतों का सिरा जुड़ा रहता है। भोजन का सारहीन अथवा बग़ैर पचा हुआ अंश बड़ी आँतों में पहुँच कर धीरे धीरे एक सिरे से दूसरे सिरे को जाता है जैसे कि छोटी आँतों में ऊपर वर्णन किया जा चुका है। बड़ी आँतें पाँच साढ़े पाँच फुट लम्बी होती हैं। पेट के दाहिनी तरफ़ नीचे से शुरू होकर यह ऊपर को जिगर के पास तक जाती है; वहाँ से मुड़कर मालाकार यह बाईं तरफ़ तिल्ली के पास तक जाती है; वहाँ से मुड़कर सीधे नीचे की तरफ़ जाकर मलाशय में समाप्त हो जाती है। बड़ी आँत छोटी आँतों को एक बड़ी माला के आकार में घेरे रहती है। यह भोजन के सार-हीन अंश से जल का भाग सोख लेती है और उसको गाढ़ा करके मल (पाख़ाने) के आकार का कर देती है। इसमें से निकल कर मल (पाख़ाना) मलाशय में जमा हो जाता है। इसके कुछ हद तक जमा होने ही उस स्थान की ज्ञाननाड़ियाँ मलोत्सर्ग करने की सूचना देती हैं। मलाशय की मांसपेशियों के संकुचन से मल गुदा-मार्ग से पाख़ाने के रूप में बाहर निकल जाता है। भोजन का अंश दो प्रकार से आँतों से खिच कर रक्त में पहुँचता है। (१) रसवाहिनी नालिकाओं-द्वारा भोजन का चरबीला अंश दूध के रूप में खिच जाता है। ये नालिकायें एक दूसरे से मिलकर बड़ी होती जाती हैं और अंत में एक बड़े रसवाही नाल में समाप्त हो जाती हैं। यह गले के पास वामभाग की ऊर्ध्व महासिरा में समाप्त हो जाती है, जिसके द्वारा इसका समस्त रस हृदय के वामभाग में पहुँच जाता है। यहाँ पर यह रक्त से मिल जाता है। (२) भोजन का

अंश अत्यन्त सूक्ष्म रक्तनालिकाओं-द्वारा छोटी और बड़ी आँतों से खिंच जाता है। सूक्ष्म नालिकाओं के संगम से बड़ी नालिकायें बनती जाती है जो मिलकर एक बड़े जाल द्वारा कलेजे (जिगर) में इस भोजन के सार को पहुँचाती हैं। यहाँ से फिर यह सूक्ष्म नालिकाओं से विभाजित हो जाती है। जिगर इसमें से पित्त के कुछ चरबीदार पदार्थ और शक्कर का अंश निकाल लेता है। इनके निकल जाने के बाद रक्तनालिकायें एक दूसरे से संगम करके अधःमहासिरा में समाप्त हो जाती हैं। अधःमहासिरा में और भी छोटी छोटी नालिकायें, आमाशय, प्लीहा, अग्नाशय और आँतों इत्यादि से आकर मिलती हैं। यह अपना अशुद्ध रक्त, जो इन अङ्गों को भोजन पहुँचाने के बाद बचा है और जिसमें इन अङ्गों का मल भी मिल गया है इसी में डालती हैं। यह सब रक्त इकट्ठा होकर दिल के दाहिनी ओर के निचले दरवाज़े से साफ़ होने के लिए चला जाता है।

शरीर में जितने भी तन्तु हैं जैसे मांस, हड्डी, स्नायु, त्वचा, नाड़ी इत्यादि सबको रक्त-द्वारा ही भोजन मिलता है। जिस तन्तु या अंग को जिस वस्तु की आवश्यकता होती है वह उसे रक्त से खींच लेता है और हानिकारक पदार्थ या व्यर्थ के पदार्थ उसमें फेंक देता है।

रक्त का प्रवाह

छाती की बाईं तरफ़ सातवीं पसली के पास हड्डियों के नीचे मांसपेशियों का एक पिण्ड रहता है जिसे हृदय या दिल कहते हैं। इसका आकार कमल की बन्द कली-सा होता है। लम्बाई चौड़ाई में प्रत्येक मनुष्य का दिल बन्द मुट्ठी के बराबर होता है। यह एक थैली में बन्द होकर मांस-पेशियों से जकड़ा होता है। इसका दाहिना भाग नीला और बायाँ लाल दिखलाई पड़ता है। इसका कारण यह है कि दाहिनी तरफ़ अशुद्ध और बाईं तरफ़ शुद्ध लाल रक्त रहता है।

हृदय चार कोठरियों में विभाजित होता है। दो दाहिनी तरफ़ और दो बाईं तरफ़ होती हैं। दाहिनी तरफ़ की ऊपरी कोठरी में दो छेद होते हैं। एक ऊपर और दूसरा नीचे। प्रत्येक छिद्र से एक बड़ी रक्त की नली जुड़ी होती है। ऊपरी बड़ी नली को ऊर्ध्वमहासिरा कहते हैं। यह शरीर के ऊपरी भागों अर्थात् सिर, हाथ और छाती से अशुद्ध रक्त लाती है। निचली नली को अधःमहासिरा कहते हैं। यह पेट, आँतों, आमाशय, जिगर, तिल्ली इत्यादि से अशुद्ध रक्त हृदय के दाहिने भाग में पहुँचाती है। ऊपर और नीचे की कोठरियों के बीच में एक द्वार होता है। जब ऊपरी कोठरी संकुचित होती है तब इसमें का रक्त इस द्वार से होकर नीचे की कोठरी में आ जाता है। रक्त के भर जाने से द्वार बन्द हो जाता है और नीचे की कोठरी जिसे दाहिनी वेन्ट्रिकली कहते हैं, के आकस्मिक संकुचन से रक्त एक बड़ी रक्त-नली के द्वारा फेफड़ों में पहुँचता है, यह रक्त-नली आगे चल कर दो शाखाओं में विभाजित हो जाती है। इनमें से एक दाहिने और दूसरी बायें फेफड़े में पहुँचकर असंख्य सूक्ष्म रक्त-नालिकाओं में बँट जाती है। फेफड़ों में श्वास की वायु से रक्त शुद्ध होकर दूसरी प्रकार की रक्त-नालिकओं द्वारा इकट्ठा होकर दो बड़ी बड़ी नलियों द्वारा हृदय के बाईं तरफ़ की ऊपरी कोठरी में, जिसे बाईं आरिक्ल कहते हैं, लौट आता है। यहाँ से रक्त एक दरवाज़े से होकर नीचे की कोठरी में, जिसे बाईं वेन्ट्रिक्ल कहते हैं जाता है। बाईं ओर की निचली कोठरी से एक बहुत बड़ा रक्त-नाल निकलता है जिसे महा-धमनी कहते हैं। इस कोठरी की मांसपेशियाँ सिकुड़ कर इतने वेग से रक्त को पिचकारी की तरह से इस नाल में फेंकती हैं कि वह इस बड़े नाल की शाखा प्रशाखाओं द्वारा अंग अंग में व्याप्त हो जाता है। हृदय से शुद्ध रक्त इतने वेग से निकलता है कि शरीर के किसी भी भाग में उसकी चाल बन्द नहीं होती। इस बात की परीक्षा, किसी भी अंग की इन नालिकाओं, जिन्हें धमनी कहते हैं, के काटने से हो सकती है।

यदि पैर या हाथ के अँगूठे की कोई नालिका कट जाय तो उसमें से रक्त की धार पिचकारी की तरह से छूटने लगती है। शरीर के मल और गन्दी चीज़ों के ले लेने से रक्त फिर अशुद्ध हो जाता है। यह अशुद्ध रक्त दूसरी प्रकार की नालिकाओं, जिन्हें शिरा कहते हैं, द्वारा इकट्ठा होकर फिर हृदय के दाहिने भाग में लौट आता है। रक्त-नालिकायें एक दूसरे से मिल कर बड़ी हो जाती हैं और अन्त में शरीर के ऊपरी भागों की रक्त-नालिकायें एक बड़े नाल में समाप्त हो जाती हैं। इसी में गले के पास लसिका और भोजन से खिंचा हुआ दूधिया रस भी मिल जाता है। यह रक्त-नाल जैसा कि ऊपर वर्णन किया जा चुका है हृदय की दाहिनी आरिक्ल नामक कोठरी में ऊपरी छेद-द्वारा अशुद्ध रक्त पहुँचा देता है। शरीर के निचले भागों से भी अशुद्ध रक्त जमा होकर एक बड़ी रक्त-नली-द्वारा हृदय की इसी कोठरी में निचले छेद से पहुँच जाता है। इस कोठरी से फिर नीचे की कोठरी, जिसे दाहिनी वेन्ट्रिक्ल कहते हैं, में जाता है। इस कोठरी के संकुचन से रक्त साफ़ होने के लिए, पिचकारी की तरह वेग से, फेफड़ों में जाता है। रात दिन सोते जागते यह रक्त का प्रवाह होता रहता है।

शुद्ध रक्त की नालिकायें जिन्हें धमनी कहते हैं अधिकतर शरीर की भीतरी सतह में होती हैं और अशुद्ध रक्त को हृदय में लौटाने वाली नालिकायें, जिन्हें सिरायें कहते हैं, खाल के नीचे होती हैं। किसी किसी स्थान पर धमनी कुछ ऊपर को रहती है जैसे अँगूठे के नीचे की कलाई में। इसको साधारण भाषा में नाड़ी कहते हैं। इस पर उँगली रख कर परीक्षा करने से शरीर का बहुत कुछ भीतरी हाल मालूम पड़ता है। साधारणतया मनुष्य का हृदय एक मिनट में लगभग ७० बार धड़कता है अर्थात् हृदय इतनी ही बार सब धमनियों में रक्त को फेंकता है जिसमें वे भी इतनी ही बार फड़कती हैं। ज्वर की दशा में हृदय की गति तीव्र हो जाती है इसी कारण से नाड़ी भी जल्दी जल्दी चलने लग जाती है।

बच्चों की नाड़ी अधिक तेज़ी से चलती है। बुड्ढों और कमज़ोर आदमियों की नाड़ी की गति मन्द होती है। सोने के समय यदि हाथ या किसी दूसरी वस्तु का दबाव हृदय पर पड़ जाता है तो हृदय को रक्त फेंकने में कुछ अधिक परिश्रम करना पड़ता है। इसी कारण से बुरे बुरे स्वप्न दिखलाई पड़ने लगते हैं और मनुष्य कभी कभी डर कर चिल्ला उठता है। झुक कर बैठने अथवा झुक कर चलने से रक्त के प्रवाह में रुकावट होती है।

श्वासनक्रिया और रक्त की शुद्धि

जब हम श्वास लेते हैं तब बाहर की शुद्ध वायु नाक में जाती है। नाक की नली की भीतरी सतह पर सैकड़ों छोटे छोटे बाल होते हैं जो वायु की गर्द और कीड़े मकोड़ों को अन्दर जाने से रोकते हैं। इस नली की सतह पर रक्त की सूक्ष्म नालिकाओं का जाल होता है जिसके संसर्ग से ठण्डी वायु की ठंडक जाती रहती है। मुँह खोल कर साँस लेने से न तो वायु छन सकती है और न उसकी ठंडक ही नष्ट होती है। इसलिए ऐसा करना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। वायु नाक की नली द्वारा कंठ, स्वर-यन्त्र, श्वास-पथ और श्वास-नालों में से होती हुई दोनों फेफड़ों में पहुँचती है।

फेफड़े—अस्थि-पञ्जर से सुरक्षित हँसुली के नीचे छाती में दोनों तरफ़ एक एक फेफड़ा होता है। ये एक ढीली थैली में बन्द होते हैं। इनका रङ्ग और आकार बहुत कुछ केले के फूल से मिलता जुलता है। श्वास-नालियाँ फेफड़ों में जाकर शाखा प्रशाखा द्वारा अत्यन्त सूक्ष्म प्रणालिकाओं में विभाजित हो जाती हैं। प्रत्येक श्वास-नालिका एक वायु-कोष्ठी में समाप्त होती है। इन कोष्ठियों के संसर्ग में अत्यन्त सूक्ष्म रक्त-नालिकायें होती हैं जिनमें अशुद्ध रक्त का प्रवाह होता रहता है। वायु-कोष्ठियों और रक्त-नालिकाओं के बीच एक अत्यन्त पतली

झिल्ली होती है। इसमें से छन कर वायु का संजीवनी अंश (ओषजन) रक्त में चला आता है और रक्त से कारबोनिक ऐसिड गैस वायु में आ जाती है। शुद्ध रक्त दूसरी प्रकार की नालिकाओं द्वारा इकट्ठा होकर हृदय के बायें भाग में आ जाता है। यहाँ से महाधमनी-द्वारा सारे शरीर में बट जाता है। फेफड़ों से लौटी हुई साँस में हानिकारक और दूषित वस्तुयें मिली रहती हैं। श्वास लेने में शुद्ध हवा भीतर जाती है और दूषित वायु बाहर निकलती है। यदि किसी कमरे में वायु को भले प्रकार से आने जाने का प्रबन्ध नहीं है तो वह वायु उसमें रहने वालों के श्वास लेने से थोड़ी ही देर में दूषित हो जायेगी। ओषजन की कमी से शरीर रोगी हो जायगा। कपड़े से मुँह ढक कर सोना भी इसीलिए हानिकारक है। भोजन के बग़ैर मनुष्य कई दिन तक जी सकता है परन्तु वायु के अभाव में कुछ मिनटों ही में जीवन-लीला समाप्त हो जाती है। प्रत्येक पुरुष को जहाँ तक हो सके शुद्ध और ताज़ी वायु में रहना चाहिए। रोगियों और बच्चों के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है।

रक्त (ख़ून)

रक्त लाल रङ्ग का तरल पदार्थ है। यह शरीर के प्रत्येक भाग में पाया जाता है। यदि रक्त को एक शीशे की साफ़ पटरी पर फैला कर सूक्ष्म-दर्शक यन्त्र द्वारा देखा जाय तो एक पीले रङ्ग के तरल पदार्थ में जिसे प्लाज़मा कहते हैं, बहुत सी छोटी छोटी टिकुलियाँ तैरती हुई दिखलाई देंगी। टिकुलियाँ किनारों पर मोटी और बीच में पतली होती हैं। यदि ग़ौर से देखा जाय तो ये दो प्रकार की मालूम पड़ेंगी एक रङ्गीन और दूसरी स्वच्छ। रङ्गीन टिकुलियाँ लाल रङ्ग की होती हैं। इन्हीं से रक्त लाल रङ्ग का दिखलाई पड़ता है। स्वच्छ टिकुलियाँ रङ्गीन की अपेक्षा बड़ी और संख्या में कम होती हैं। रङ्गीन टिकुलियाँ वायु से संजीवनी

अंश (ओषजन) खींच लेती हैं और विषैला अंश (कारबोनिक ऐसिड गैस) छोड़ देती हैं। स्वच्छ टिकुलियाँ शरीर में पहरेदारों का कार्य करती हैं। वे रक्त में सदैव इधर उधर घूमा करती हैं। बाहरी हानिकारक पदार्थ जैसे रोग के कीटाणु या सड़े गले शरीर का अंश रक्त में पहुँचा वे उसे पकड़ कर खा डालती हैं। हानिकारक पदार्थ की अधिकता में अड़ोस पड़ोस से स्वच्छ टिकुलियाँ बहुत सी संख्या में उस स्थान पर आ जाती हैं और उसको हटाने की चेष्टा करती हैं। इस चेष्टा में सफल होने पर वे फिर अपने स्थान पर आ जाती हैं। यदि वे इस कार्य में असफल होती हैं तो उनमें से बहुतों की इसी चेष्टा में मृत्यु हो जाती है और उनके मृतक शरीरों से मवाद बन जाती है यह रास्ता पाकर शरीर से फोड़े के रूप में बाहर निकल जाती है। शरीर से बाहर निकलने पर रक्त जम जाता है जिससे एक प्रकार की ढाठ बन जाती है। यह रक्त-नालिकाओं का मुख जिससे रक्त-स्राव हो रहा हो बन्द कर देती है। इस प्रकार से यह शरीर को रक्तपात-द्वारा क्षीण होने से बचाती हैं। हृदय से निकली हुई रक्त-नालिकाओं में जिन्हें धमनी कहते हैं रक्त लाल और चमकीला होता है। शरीर से हृदय का रक्त पहुँचाने वाली रक्त-नालिकाओं का, जिन्हें सिरा कहते हैं, रक्त कुछ नीलापन लिये हुए कुछ मैला होता है

तिल्ली (प्लीहा बरबट)

पेट में बाईं तरफ़ आमाशय के कुछ नीचे तिल्ली होती है। यह जिगर की अपेक्षा छोटी होती है और कालापन लिये हुए यह गाढ़े लाल रंग की होती है। साधारणतया यह पसलियों के नीचे छिपी रहती है और टटोलने पर मालूम नहीं देती है। जड़ैया बुख़ार कालाजार इत्यादि रोगों में यह बहुत बढ़ जाती है। कभी कभी पेट का तिहाई भाग तक छेक लेती है। बढ़ी हुई तिल्ली में थोड़ी ही सी ठेस लगने पर तिल्ली फट जाती है जिससे रोगियों की मृत्यु हो जाती है।

गुर्दा और मूत्र

आँतों के नीचे रीढ़ की हड्डी के दोनों तरफ़ बारहवीं पसली के पास एक एक गुर्दा होता है। प्रत्येक गुर्दा चार इंच लम्बा और लगभग दो इंच चौड़ा होता है। यह कालापन लिये हुए गाढ़े लाल रङ्ग का होता है और इसका आकार सेम के बीज-सा होता है। प्रत्येक गुर्दे में एक बड़ी धमनी, एक सिरा और एक मूत्र-वाहक नालिका होती है। गुर्दों का कार्य रक्त से जल और कुछ अम्ल, क्षार और हानिकारक पदार्थों को निकाल कर मूत्र बनाना है। मूत्र इकट्ठा होकर एक नली द्वारा मांस की एक थैली में, जिसे मूत्राशय (वस्ति) कहते हैं, जमा होता है। इस थैली के कुछ सीमा तक भर जाने पर लघुशंका की इच्छा होती है, शीतकाल में पसीना कम निकलता है किन्तु पेशाब अधिक होती है। शीत के प्रभाव से त्वचा की रक्त-नालिकायें सिकुड़ जाती हैं जिससे त्वचा में रक्त कम हो जाता है, गुर्दों में रक्त की मात्रा अधिक हो जाती है और मूत्र अधिक बनता है। गरमी के दिनों में त्वचा की रक्त-नालिकाओं के फैल जाने से पसीना अधिक बनता है। बहुत पानी पी लेने से रक्त पतला पड़ जाता है उसका गाढ़ापन एक-सा रखने के लिए गुर्दे उसमें से अधिक पानी निकालते हैं, इससे पेशाब भी अधिक होती है। कुछ रोगों में जैसे बहुमूत्र रोग में, पेशाब अधिक बनने लग जाती है। इसका कारण रक्त में कुछ विषैले पदार्थों की अधिकता है। इनको रक्त से दूर करने की चेष्टा में गुर्दों को बहुत मेहनत पड़ती है और इसी कारण पेशाब अधिक होती है। इस प्रकार के रोगों में रोगी को ऐसा भोजन करना चाहिए जिससे रक्त दूषित न होने पावे। शक्कर या शक्कर में परिणत हो जाने वाले पदार्थ ऐसे रोगी के लिए विशेष कर हानिकारक हैं।

त्वचा (खाल)

त्वचा का कार्य शरीर को बाहरी आघातों से बचाना और शरीर की गर्मी को एक सा बनाये रखना है। दर्द, गर्मी, मुलायमपन, खुरखुराहट इत्यादि का अनुभव करना है। पीड़ा, शीतलता, उष्णता, गुरुत्व, कोमलता, खुरखुराहट और चिकनाहट, मलोत्सर्ग (पसीने द्वारा शरीर की मैल को बाहर निकालना) और कुछ वस्तुओं का जैसे तेल इत्यादि का कुछ हद तक शरीर में शोषण करना है। त्वचा चिकनी और नरम होती है। यह कई पर्तों से बनी होती है। ऊपरी पर्त रङ्ग-हीन होता है। इसमें ज्ञान-तन्तु बहुत कम मात्रा में होते हैं। इसके नीचे का पर्त उष्ण देशों में रहने वालों में रङ्गीन कणों से परिपूरित होता है। इसी से उष्ण देशों में रहने वालों का रंग काला होता है। रङ्गीन पर्त के नीचे असली त्वचा होती है। इसमें असंख्य सूक्ष्म रक्त-नालिकाओं और ज्ञान-तन्तु-सूत्रों का जाल बिछा होता है। ज्ञान-तन्तुओं के जाल-द्वारा शीतलता, उष्णता और स्पर्श चर्बी का पर्त होता है। मोटे आदमियों में यह पर्त मोटा और दुबलों में पतला होता है। पर्त शरीर की गर्मी को निकलने से रोकता है। चर्बी के पर्त में पसीना बनाने वाली ग्रन्थियाँ होती हैं। इन ग्रन्थियों के चारों तरफ़ बहुत-सी सूक्ष्म ग्रंथियाँ रक्त से लवण और कुछ विषैले पदार्थ को निकाल कर पसीना बनाती हैं। पसीना एक नली द्वारा त्वचा की बाहरी सतह पर आ जाता है। इस नली का सिरा तो पसीना बनाने वाली ग्रंथि से जुड़ा होता है और दूसरा सिरा असली त्वचा, रंगीन पर्त और ऊपरी पर्त को पार करता हुआ त्वचा की बाहरी सतह पर खुलता है।

शरीर से हर समय पसीना निकला करता है। शरीर की गर्मी से इसका तरल अंश भाप बनकर उड़ जाता है और ठोस भाग मल के रूप में शरीर पर जमा हो जाता है। जब पसीना अधिक निकलने लगता है

तब छोटे छोटे जल-कणों के रूप में दिखाई पड़ता है। यह कण मिलकर बड़े हो जाते हैं और अन्त में बूँदों के रूप में शरीर से टपक पड़ते हैं। साधारणतया शरीर से चौबीस घंटे में लगभग ढाई तीन पाव पसीना निकलता है। मैल से पसीनों की नालियों के मुख बन्द हो जाने पर फोड़े, फुंसियाँ, दाने और अमौरियाँ निकलने लगती हैं।

मस्तिष्क (दिमाग़)

मस्तिष्क की बनावट बहुत कुछ अख़रोट से मिलती जुलती है। अख़रोट का ऊपरी कड़ा छिलका सिर की मज़बूत हड्डियों से और उसके अन्दर की गिरी पर चढ़ा हुआ काग़ज़ सा पर्त मस्तिष्क पर चढ़ी हुई झिल्लियों से और अख़रोट के अन्दर की गिरी मस्तिष्क (दिमाग़) से बहुत कुछ मिलती जुलती है। सिर पर बाल होते हैं यह मस्तिष्क को सर्दी गर्मी और हल्की चोटों से बचाते हैं। बालों के नीचे खाल का मोटा पर्त होता है। इसके नीचे मज़बूत हड्डियों का एक डिब्बा होता है। यह हर प्रकार के आघात से दिमाग़ को बचाता है। इन हड्डियों के नीचे एक मोटी झिल्ली होती है जिसकी ऊपरी सतह कपाल की हड्डियों से जुड़ी होती है। इसके नीचे महीन जाल-सी झिल्ली होती है। इसमें एक प्रकार का जल रहता है जो मस्तिष्क को बाहरी आघात से बचाता है। इसके नीचे एक और झिल्ली होती है जिसमें सूक्ष्म रक्त-नालिकाओं का जाल रहता है जिसका काम दिमाग़ को रक्त पहुँचाना है।

मस्तिष्क के चार बड़े बड़े भाग हैं। बृहत् मस्तिष्क, लघु मस्तिष्क, सुषुम्ना-शीर्षक और सेतु।

बृहत् मस्तिष्क के दो भाग होते हैं; दाहिना और बायाँ। दोनों भाग एक दूसरे से बीच में जुड़े होते हैं। बृहत् मस्तिष्क में चिन्तन, आकांक्षा, विवेक और स्मरण करने की शक्ति होती है। इसी की प्रेरणा से ऐच्छिक मांसपेशियाँ कार्य करती हैं और पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ—आँख, कान, नाक,

जीभ, त्वचा—इसी के अधीन होती हैं। इसमें किसी प्रकार की ख़राबी हो जाने से अंग अंग बेकार हो जाते हैं। बाईं तरफ़ के मस्तिष्क के अधीन शरीर के दाहिने अंग और बायें अंग दाहिने भाग के अधीन होता है।

लघु मस्तिष्क—इसके भी दो भाग होते हैं दाहिना और बायाँ। इसका काम शरीर को ठीक स्थिति में रख कर आगे पीछे गिरने से बचाना है।

सुषुम्ना-शीर्षक—यह सुषुम्ना का चौड़ा भाग है जो कपाल की हड्डियों के भीतर होता है। यह दिल, फेफड़ों और पाचन-संस्थान की मांस-पेशियों पर शासन करती है। लार के पैदा करने में देखने, सुनने, स्वाद लेने और बोलने में यह सहायता करता है। इसमें किसी प्रकार का रोग हो जाने से तत्काल मृत्यु हो जाती है।

सेतु-मस्तिष्क—यह क्षुद्र मस्तिष्क के दोनों भागों के बीच में पुल-सा बना कर उनको एक दूसरे से जोड़ता है।

नाड़ी-तन्तु और नाड़ी-कोष

मस्तिष्क की ऊपरी सतह भूरे रङ्ग की होती है और उसके नीचे सफ़ेद रङ्ग का पर्त होता है। भूरे रङ्ग की सतह में असंख्य नाड़ी-कोष होते हैं। ये एक दूसरे से अत्यन्त सूक्ष्म सूत्रों द्वारा जुड़े रहते हैं। सफ़ेद रंग का पर्त इन्हीं सूत्रों से बना रहता है। प्रत्येक कोष में किसी एक वस्तु विशेष का ज्ञान होता है और इनका लगाव सूत्रों-द्वारा दूसरे कोषों से होता है; जिससे एक वस्तु के ज्ञान के साथ ही साथ और वस्तुओं का भी अनुभव होने लगता है जैसे हम किसी चित्र में एक परिचित वृक्ष को, जिसमें फल और फूल लगे हैं, देखते हैं तो साथ ही साथ उसकी पत्तियों के रंग, फूलों की सुगन्ध और फलों के स्वाद का भी अनुभव होने लगता है। मस्तिष्क से बारह जोड़ बड़ी बड़ी वातनाड़ियाँ निकलती हैं, जो नाक, आँख, कान, जीभ,

चेहरे, गले, फेफड़े, कलेजे, हृदय, आमाशय इत्यादि को जाती हैं। रीढ़ की हड्डी के दोनों तरफ़ छेद होते हैं जिनमें से होकर ३१ जोड़ नाड़ियाँ सुषुम्ना से निकल कर सारे शरीर में फैल जाती हैं। वात-नाड़ियाँ दो प्रकार की होती हैं। चैतन्य और प्रेरक। चैतन्य नाड़ियाँ शरीर के भिन्न भिन्न भागों का अनुभव सुषुम्ना को या सुषुम्ना-द्वारा मस्तिष्क को पहुँचाती हैं। प्रेरक नाड़ियाँ मस्तिष्क या सुषुम्ना की प्रेरणा मांसपेशियों को पहुँचाती हैं। यदि किसी के हाथ पर बैठ कर एक बर्र डंक मार दे तो उस स्थान की चैतन्य नाड़ियाँ इसकी सूचना सुषुम्ना के द्वारा मस्तिष्क को पहुँचाती हैं और वहाँ पर दर्द का अनुभव होता है। मस्तिष्क से मांसपेशियों को हाथ झटक देने की या बर्र को दबाकर मार डालने की प्रेरणा होती है जिससे या तो वह हाथ झटक देता है या बर्र को दबा कर मार डालता है।

आँख

मस्तक के नीचे हड्डियों के गड्ढे में आँख रहती है। पूरी आँख गेंद की तरह गोलाकार होती है। आँख के गोले के चारों तरफ़ चरबी की गद्दी रहती है जिससे यह बाहर को उभरी होती है और इसके घूमने में भी सुविधा होती है। रोगों में कमज़ोरी के कारण चरबी के घट जाने से आँख भीतर को धँस जाती है। आँख का गोला ६ मांसपेशियों द्वारा ऊपर नीचे, तिरछे दाहिने और बायें घूमता है। आँख का ऊपरी पर्त कड़ा, मोटा और सफ़ेद रङ्ग का होता है। यह पारदर्शी नहीं होता है अर्थात् इसको प्रकाश की किरणें नहीं भेद सकती हैं। इसके सामने के भाग के बीच में एक छोटी दुअन्नी के लगभग शीशे की तरह निर्मल और पारदर्शी भाग होता है इसे "काँच तुल्यास्तर" कहते हैं। यह सफ़ेद भाग की अपेक्षा अधिक उभड़ा होता है। इसके पीछे आँख का पोषक पर्त होता है। इसमें अगणित सूक्ष्म रक्त-नालिकायें होती हैं जो

आँख का पोषण करती हैं। इस पर्त का रंग काला होता है। इसके काले होने के कारण आँख में पड़ने वाली रोशनी चारों तरफ़ न फैलकर नियत स्थान पर पड़ती है। काँच तुल्यास्तर के पीछे एक रंगीन पर्दा होता है जिसे सछिद्रा-पटल कहते हैं। इस पर्दे के रङ्ग से आँख का तिल काला नीला या भूरा दिखलाई पड़ता है। रङ्गीन पर्दे में एक छोटा छेद होता है जिसे आँख की पुतली कहते हैं। नन्हीं नन्हीं मांसपेशियों के फैलने सिकुड़ने से यह छेद छोटा बड़ा हो जाता है। हल्की रोशनी में यह फैल जाता है जिससे आँख में अधिक रोशनी जाने पाती है और तेज़ रोशनी में यह सिकुड़ कर छोटा हो जाता है जिसमें तेज़ रोशनी के प्रभाव से आँख के सुकुमार दृष्टिपटल में किसी प्रकार की हानि न होने पावे। रंगीन परदे और काँचतुल्यास्तर के बीच में थोड़ा-सा स्थान होता है। यह एक स्वच्छ निर्मल जल सरीखे पदार्थ से भरा होता है। पुतली के पीछे एक छोटे मटर के बराबर लुचलुचा पारदर्शी स्वच्छ पदार्थ होता है। यह आतशी शीशे की तरह होता है, इसके चारों तरफ़ बन्धन होते हैं जिनके सिकुड़ने से इसका आकार लम्बा होता है और फैलने से अधिक गोलाकार हो जाता है। नेत्र-ताल के पीछे बहुत-सा स्थान होता है, जिसमें एक शीशे की तरह स्वच्छ पारदर्शी और गाढ़ी वस्तु भरी होती है। मस्तिष्क से एक मोटी चैतन्य नाड़ी आती है। यह बाहर के श्वेत और बीच के काले पर्तों को छेद कर आँख के भीतर जाती है। इसके सूत्रों का जाल आँख की भीतरी सतह के लगभग दो तिहाई भाग को ढके रहता है। इसे दृष्टि-पटल कहते हैं। पुतली के ठीक सामने दृष्टि-पटल में एक स्थल होता है जिसे पीत-बिन्दु कहते हैं। इस स्थल पर किरणों के पड़ने से दृष्टि का ज्ञान होता है। जब किसी वस्तु को देखा जाता है तब उसके प्रत्येक भाग से प्रकाश की किरणें निकल कर आँख पर पड़ती हैं। उनमें से कुछ काँचतुल्यास्तर, पुतली, नेत्रताल और उसके पीछे के स्वच्छ पारदर्शी पदार्थ को पार करके दृष्टि-पटल के पीत-बिन्दु पर पड़ती है। इस स्थल

के ज्ञान-तन्तुओं द्वारा उनका प्रभाव मस्तिष्क पर होता है जिससे वस्तु के रङ्ग-रूप का अनुभव होता है। दूर की वस्तु देखने के समय नेत्र का ताल खिंचकर लम्बा और पास की वस्तु देखने के समय वह सिकुड़ कर गोल हो जाता है।

पलकें—पलकों का काम आँखों की बाहरी आघातों से रक्षा करना है। पलकों के किनारे पर छोटे छोटे बाल होते हैं। इन्हें बरौनी कहते हैं। ये धूल के कणों और छोटे छोटे कीड़ों को आँखों के अन्दर घुसने से रोकती हैं। आँख के ऊपर मस्तक के नीचे बालों की पंक्ति होती है जिन्हें भौंहें कहते हैं। ये मस्तक से टपके हुए पसीने, पानी, रक्त इत्यादि की बूँदों को आँखों में जाने से रोकती हैं।

आँख के डले के बाहर अश्रुग्रन्थि होती है। यह जल-सरीखा पदार्थ बनाकर आँखों को तर रखती है। छोटे छोटे तिनके, धूल के कण, कीटां इत्यादि के पड़ जाने या और किसी प्रकार की उत्तेजना होने से यह ग्रन्थि बहुत-सा जल-सरीखा पदार्थ बनाती है जिससे महीन कण इत्यादि बह कर या तो अश्रु-नालिका-द्वारा नाक में पहुँच जाते हैं या अश्रु-नालिका के एक-दम से इतना जल बाहर न निकाल सकने के कारण आँख के कोटों से बह कर आँसू के रूप में आँख से बाहर निकल जाते हैं।

कान

जिस प्रकार से पानी में पत्थर के फेंकने से लहरें उठती हैं, उसी प्रकार से वायु में शब्द की लहरें उठती हैं। कान का बाहरी उभड़ा हुआ भाग जिसे मामूली बोलचाल में कान कहते हैं इन लहरों को इकट्ठा कर "कर्णछिद्र" में डालता है। इस छिद्र के अन्त में ढोल पर चढ़ी हुई खाल की तरह एक महीन परदा लगा रहता है जिसे "कान का परदा" कहते हैं। इस परदे से पीछे की तरफ़ लगी हुई तीन नन्हीं नन्हीं हड्डियों की एक ज़ञ्जीर होती है। शब्द की लहरों के प्रभाव से परदा हिलने

लगता है और उससे जुड़ी हुई तीनों हड्डियाँ भी हिलने लगती हैं। ये हड्डियाँ एक कोठरी में—जिसमें एक नली, जिसे श्रुति-नालिका कहते हैं, का सिरा जुड़ा रहता है—बन्द होती हैं। इस नालिका का दूसरा सिरा गले के अन्दर खुलता है। इस नली-द्वारा वायु गले से इस कोठरी में आती रहती है। यह भीतरी वायु कान के पर्दे को बाहरी वायु की तेज़ लहरों के हानिकारक प्रभाव से बचाती है। कान की नन्हीं नन्हीं हड्डियों की ज़ञ्जीर के अन्त में एक छेद होता है जिसके पीछे "श्रवण-कला" होती है। इस कला के दो भाग हैं। एक शङ्खाकार पेचदार नली जिसे "काकलिया" कहते हैं। शब्द-लहरों की टक्कर कान के परदे पर पड़ कर अस्थिशृङ्खला से होती हुई इस शङ्खाकार नालिका में पहुँचती है। इस नालिका में सूक्ष्म ज्ञान-सूत्रों का जाल बिछा रहता है। इन सूत्रों द्वारा मस्तिष्क को इन शब्द-लहरों का ज्ञान होता है। दूसरे भाग में तीन अर्धगोलाकार नालिकायें होती हैं। एक ऊपर की तरफ़, एक नीचे और एक तिरछी लगी होती है। इन नालिकाओं में एक प्रकार का जल भरा रहता है और इनकी भीतरी सतह पर सूक्ष्म ज्ञान-तन्तुओं का जाल बिछा रहता है जिसके द्वारा शरीर की स्थिति का ज्ञान होता है। मेलों के अवसर पर चर्ख़ी और काठ के घोड़े इत्यादि आते हैं जिन पर बैठ कर लोग चक्कर खाते हैं। इनके ऊपर से उतरने पर सब चीज़ें घूमती मालूम पड़ती हैं। इसका कारण यह है कि अर्धगोलाकार नालिकाओं का जल चक्कर खाने के समय, शारीरिक स्थिति का ज्ञान रखने की चेष्टा में चर्ख़ी या घोड़ों के घूमने की दिशा में उसी तेज़ी से दौड़ने लग जाता है। चर्ख़ी या घोड़े के एकाएक खड़े हो जाने पर भी यह जल कुछ समय तक चलता रहता है इसीलिए सब चीज़ें घूमती हुई मालूम पड़ती हैं और स्थिति-ज्ञान की गड़बड़ी के कारण शरीर को सँभालना कठिन हो जाता है। कान के छेद में बहुत से महीन महीन बाल होते हैं जो गर्द और कीड़ों को कान में घुसने से रोकते हैं। इसकी

भीतरी सतह से एक प्रकार का मोम सरीखा मल पैदा होता रहता है जिसे कान का मैल या खूँट कहते हैं। इसमें विचित्र प्रकार की गन्ध होती है जिसके कारण कीड़े दूर ही से भागते हैं। यदि घुस भी गये तो इसमें फँसकर मर जाते हैं। इसी कारण से कान को खोदना और खूँट को, जब तक कि वह किसी प्रकार का कष्ट न देता हो, निकाल डालना बहुत बुरा है।

वाणी

कंठ से फेफड़ों को जानेवाली श्वास-नालिका के ऊपरी भाग में स्वर-यन्त्र होता है जिसे साधारण बोलचाल में घाँटी कहते हैं। यह एक विचित्र प्रकार की छोटी सी कोठरी है जिसमें दो पतले पतले मांस के पर्दे लगे होते हैं। बोलने के समय ये पर्दे मांस-पेशियों-द्वारा खिंच कर कड़े हो जाते हैं और आपस में सट जाते हैं। जब फेफड़ों की हवा इनमें से होकर बाहर जाने का प्रयत्न करती है ये पर्दे थर्राने लगते हैं जिससे वायु में कम्पन होकर वाणी निकलती है। जीभ के मुख में घूमने और होठों के खुलने और बन्द होने से भिन्न भिन्न प्रकार के शब्दों का उच्चारण होता है।

गंध या बास

बहुत-सी चीज़ों से अत्यन्त सूक्ष्म कण निकल कर हवा में मिल जाते हैं और साँस के साथ नाक में जाते हैं। नाक की भीतरी सतह पर सूक्ष्म गंध-तन्तु के सूत्रों का जाल बिछा रहता है। इन कणों के नाक में पहुँचने से गंध-तन्तु के सूत्रों में उत्तेजना होती है। यह गन्ध नाड़ी-द्वारा मस्तिष्क में पहुँच कर सुगन्ध-दुर्गन्ध का ज्ञान कराती है। मैली, सड़ी, विषैली और हानिकारक वस्तुओं से प्रायः दुर्गन्ध आती है। सूँघने की शक्ति शरीर को ऐसे पदार्थों से सचेत कर देती है कि ये हानिकारक हैं और इनसे दूर रहने ही में शरीर का कल्याण है।

साधारण ज्ञान—आँख, कान, नाक, जिह्वा और त्वचा में अपना अपना विशेष प्रकार का ज्ञान होता है। इन पञ्च ज्ञान के अतिरिक्त शरीर को और भी कई प्रकार का ज्ञान होता है। जैसे भूख-प्यास का ज्ञान, शरीर का स्वस्थ और फुरतीला मालूम होना, दुख और सुख का अनुभव इत्यादि। इस प्रकार के ज्ञान के लिए कोई विशेष अंग नहीं हैं। समस्त शरीर से इस प्रकार का ज्ञान होता है। इसे साधारण ज्ञान कहते हैं। प्रत्येक प्राणी में दोनों (साधारण तथा विशेष) ज्ञान होते हैं। इसी से वे अपने शत्रु-मित्र को दूर ही से पहिचान कर अपने बचाव का उपाय करते हैं।

छठा अध्याय

शिशु

बालक की वृद्धि और विकास

तौल—नवजात शिशु का भार ३½ सेर के लगभग होना है, और शुरू के तीन दिनों में अंत्रमल (पाखाना) और पेशाब के निकल जाने के कारण और माता का दूध न मिलने के कारण २½ या तीन छटाँक घट जाता है; किन्तु प्रायः दसवें दिन तक इसकी पूर्ति हो जाती है। चार महीने की आयुवाले बालक का भार क़रीब ७ सेर के होता है अर्थात् उत्पन्न होने के समय से दुगुना और साल भर के बालक का तिगुना (१०½ सेर) होता है।

दूसरे वर्ष उसका बोझ ३ सेर के लगभग बढ़ जाता है और उसके पश्चात् २, २½ और फिर ३ सेर प्रतिवर्ष १२ वर्ष की आयु तक बढ़ता है। इसके बाद बोझ अधिक बढ़ने लगता है।

लंबाई—नवजात शिशु की लम्बाई २० इंच के लगभग होती है। पहले वर्ष में ८ इंच के लगभग बाढ़ होती है और इसके बाद पाँच वर्ष तक ३½ इंच प्रतिवर्ष वह बढ़ता है। और फिर २ इंच प्रतिवर्ष की बाढ़ होती है। गर्मी और वसंत ऋतु में बाढ़ अधिक होती है। इस पुस्तक के अन्त में भिन्न भिन्न अवस्थाओं पर बच्चों, स्त्री, पुरुषों की लम्बाई और बोझ की "आपेक्षिक सारणी" दी गई है।

ब्रह्मतालु—अर्थात् शिर के बीच का पोला स्थान (चाँद) साधारणतया यह १५ से १८ महीने में बंद हो जाता है। छोटे सिरवाले बच्चों में यह इस समय से पूर्व ही बन्द हो जाता है और देर में बन्द होना रोगसूचक है। जैसे सुखंडी और बच्चे की बाढ़ का मारा जाना इत्यादि।

पाचन-संस्थान—नवजात शिशु के आमाशय की धारण-शक्ति लगभग ४ तोले या १$\frac{१}{२}$ औंस होती है। ३ छटाँक या ६ औंस ६ महीने के शिशु की और ४$\frac{१}{२}$ छटाँक या ९ औंस एक वर्ष के शिशु की होती है।

शिशु के आमाशय में अधिक पाचन-शक्ति नहीं होती है। आमाशय के रस के द्वारा स्तन का दूध प्रायः १५ मिनट के अंदर जम जाता है, और एक घंटे के पूर्व ही उसका अधिकांश अर्धपरिपक्व अवस्था में आँतों में पहुँच जाता है।

गाय के दूध के पाचन में माता के दूध की अपेक्षा अधिक देर लगती है। इससे यह स्पष्ट है कि एक बच्चे का आमाशय (पेट) १$\frac{१}{२}$ से २$\frac{१}{२}$ घंटे के भीतर ख़ाली हो जाता है और प्रथम मास में तो इससे भी जल्दी ख़ाली हो जाता है। अन्नपाचन की शक्ति जो लार में होती है वह एक वर्ष से पूर्व भले प्रकार से नहीं आती है। अन्नाशय से अन्न पाचन करनेवाला रस दाँतों के निकलने से पहले बहुत कम निकलता है। इस कारण अन्न का पाचन इस काल तक अपूर्ण होता है। यदि अधिक मात्रा में खिला भी दिया जाय तो वृहद्यन्त्र में जाकर वह सड़ता है और दुर्गन्धियुक्त वायु और अम्ल पदार्थ बनाता है जिससे बच्चे के पेट में ऐंठन और अफरन होने लगती है; और तीव्र ज्वर तक हो आता है।

ग्रंथियाँ (गिलटियाँ)—पसीना पहले हफ़्ते के बाद से आना शुरू होता है। और आँसू चार महीने की अवस्था से निकलते हैं। साधारणतया नवजात शिशु के अंड अंडकोष में होते हैं; लेकिन कभी कभी एक

या दोनों तरफ़ नहीं भी होते और पहले या दूसरे महीने में अंडकोष में उतरते हैं। यदि पहले वर्ष तक वे नहीं उतरते तो अंड के साथ में साधारणतया आँत भी उतर आती है।

निद्रा—शुरू के कुछ हफ़्तों तक बच्चों का अधिकांश समय दूध पीने, शौचादि कर्म करने के अलावा सोने में ही बीतता है; वे क़रीब २० घंटे या इससे भी अधिक सोते हैं; एक साल की अवस्थावाले को १५ घंटे; दो और तीन वर्षवालों को क़रीब १३ घंटे सोना चाहिए। स्कूल में पढ़नेवाले बच्चों को कम से कम नौ घंटे अवश्य सोना चाहिए।

ज्ञानेन्द्रियाँ—साधारणतया शिशु तीसरे महीने से अपनी माँ का चेहरा पहचानने लगता है; छठे महीने से उसे बहुत-सी वस्तुओं की पहचान हो जाती है। नवजात शिशु एक या दो दिन तक बहिरा होता है; किन्तु दूसरे हफ़्ते से उसे तेज़ आवाज़ अच्छी तरह से सुनाई पड़ने लगती है।

इच्छानुसार संकेत करना, चलना फिरना इत्यादि—व्यर्थ हाथ पैर फेंकने के अलावा बच्चों की प्रारम्भिक चेष्टायें सांसिद्धिक, जैसे पलक मारना और स्वाभाविक जैसे दूध पीने की, होती हैं।

इच्छानुसार चेष्टायें करने की शक्ति धीरे धीरे बाद में आती है। तीन चार महीने की अवस्था से पूर्व बच्चे अपना सिर अपने आप कुछ देर के लिए सीधा नहीं रख सकते।

बैठने की चेष्टा छठे या आठवें महीने से करने लगते हैं और ११ या १२ महीने की अवस्था से पूर्व वे सहारे के बिना अधिक देर तक नहीं बैठ सकते। नवें महीने से बच्चे रेंगने लगते हैं और साधारणतया नवें या दसवें महीने से खड़े होने की भी कोशिश करने लगते हैं। चौदहवें या सोलहवें महीने से खड़े होकर चलने लगते हैं; और यदि बच्चे को किसी प्रकार का रोग जैसे सुखंडी, लकवा इत्यादि नहीं है तो वह १½ वर्ष की अवस्था के पूर्व ही अवश्य चलने लगेगा। यदि एक बच्चा जो कि कुछ

समय तक खड़ा होकर चल लेता था; अचानक चलने से असमर्थ हो जाय तो समझ लेना चाहिए कि उसे सुखंडी की शुरुआत हो गई है।

वाणी--एक वर्ष की अवस्था से पूर्व ही बच्चे बहुत से शब्दों के अर्थ समझने लग जाते हैं; और वे कुछ विशेष सांकेतिक शब्द कर लेते हैं।

दो वर्ष के समाप्त होते होते वे छोटे छोटे वाक्यों का प्रयोग करने लगते हैं। बोलने में देरी का कारण बहिरापन या शारीरिक और मानसिक रचना की मन्दता है। लेकिन कभी कभी यह उन बच्चों में भी होता है जिनमें ऊपर लिखित एक भी विकार नहीं होते हैं।

कपड़े—बच्चों को मौसिम के अनुसार कपड़े पहनाना चाहिए। बच्चों के कपड़े अधिक काट-छाँट, मोड़-माड़ या झालरदार नहीं होने चाहिए। वे सादी बनावट के हों और बच्चे को बाहर की सर्दी गर्मी से बचा सकें, वे मुलायम हों जिससे शिशु की सुकुमार खाल को गड़ें नहीं, और कुछ ढीले हों जिसमें उनके पहनाने में भी सहूलियत हो और बच्चे को हाथ पैर फेंकने में भी रुकावट न हो।

बच्चों के सरदी के कपड़ों के लिए सबसे उत्तम सस्ती सेल की फ़लालैन है जो कि बढ़िया की बनिस्बत धोने से सिकुड़ती भी कम है और गरम भी अधिक होती है। इससे कभी कभी खुजलाहट हो जाती है, इसलिए उसके नीचे एक महीन मुलायम सूती या रेशमी कपड़ा पहनाना चाहिए।

बच्चों को रुईभरे हुए कपड़े जाड़े में पहनाने के लिए मुलायम और थोड़े दाम के होने के कारण कुछ लोग बनवाते हैं। परन्तु उनमें एक तो सर्दी के दिनों में अँगीठी से आग लग जाने का डर है और दूसरे यह मैले हो जाने पर ठीक से धुल भी नहीं सकते। ऊनी कपड़ों में आग लगने का भय कम होता है, और यदि लग भी जाय तो तुरन्त सब कपड़ों में फैलती भी नहीं है और मैले हो जाने पर वे आसानी से धुल सकते हैं। बच्चों के लिए क़ीमती कपड़ों की ज़रूरत नहीं है उनके

लिए कपड़े मामूली हों लेकिन तादाद में ज़्यादा हों जिसमें मैले होने पर बदल दिये जा सकें।

सूती फ़लालैन इस्तेमाल न करना चाहिए, क्योंकि वह आग जल्दी पकड़ लेती है। बच्चों को बहुत लम्बे कपड़े न पहनाना चाहिए। क्योंकि इससे उनके हाथ पैर फेंकने में रुकावट पड़ती है। कपड़े ढीले होने चाहिए और जो कपड़े छोटे पड़ जायँ तो उनको उधेड़ कर बढ़ा लेना चाहिए या उनका इस्तेमाल न करना चाहिए।

जब जूता पहनाने का समय आवे तब इस बात का ध्यान रहे कि उनका भीतरी किनारा सीधा हो और जूता छोटा पड़ते ही बदल देना चाहिए।

गहना पहनाना—प्रायः लोग बच्चों के कान नाक छेद कर गहने पहना दिया करते हैं; हाथ और पैरों में भी गहने डाल दिया करते हैं। इससे कई प्रकार की हानि होती है। कभी कभी छेदी हुई जगह पक आती है और उससे बच्चों को बहुत कष्ट होता है। जिस अंग में गहना पहना दिया जाता है वह साफ़ नहीं हो सकता और भारी गहने से अंग की बाढ़ में रुकावट होती है। अकसर सुनने में आया है कि गहने के लालच से चोर और बदमाश बच्चों को मार डालते हैं या गहना खींच लेते हैं जिससे नाक कान फट कर बच्चे बदशकल हो जाते हैं।

खेलना—बच्चों को खिलौना समझ कर दिन भर उन्हें चिपटाये चिपटाये घूमना और बेर बेर जगा देना बहुत बुरा है; ऐसा करने से वे गुस्सैल और चिड़चिड़े हो जाते हैं। जिस समय बच्चे को नींद आ रही हो उसे कभी भी तंग करना नहीं चाहिए। उसे शान्त स्थान पर सुलाना चाहिए जो काफ़ी हवादार हो और वहाँ पर धुआँ-धक्कड़ न हो। बच्चे को कभी भी मुख ढक करके न सुलाना चाहिए। यदि उसे मक्खी या मच्छड़ तंग करते हों तो बारीक झिरझिरा कपड़ा जिसमें से आसानी

से हवा आ जा सके उड़ा देना चाहिए। बच्चों को हमेशा गोद में रखने से वे कमज़ोर हो जाते हैं और उनके अंगों की बाढ़ ठीक से नहीं होती और कभी कभी ठीक से गोद न लेने के कारण रीढ़ की हड्डी टेढ़ी होकर बच्चे के कूबड़ निकल आता है।

व्यायाम—शुरू ही से ख़ूब व्यायाम करने की आदत डालनी चाहिए। जैसे ज़ोर से दूध पीना, हाथ पैर फेंकना इत्यादि, और ज़रा बड़ा होने पर पेट और घुटनों के बल रेंगना। सवेरे शाम बच्चों को सरदी के दिनों में धूप तथा गरमी के दिनों में छाया में नंगे लिटा कर तेल की मालिश करना और कुछ देर तक उन्हें उसी तरह से नंगे लेटे हुए हाथ-पैर फेंकने देना बहुत अच्छा है। जब वह थोड़ा और बड़ा हो जाय तो ज़मीन में खिलौने डाल कर कुछ दूर हटाता जाय। बच्चा पकड़ने के लिए बढ़ेगा और इससे उसकी कसरत होगी।

दाँतों का निकलना—दूध के दाँत २० होते हैं और दो दो एक साथ निकलते हैं। नीचे की दाढ़ें ऊपर की बनिस्बत पहले निकलती हैं। लेकिन किनारे के सुए पहले ऊपर की दाढ़ में निकलते हैं। हर दाढ़ के दोनों तरफ़ पाँच पाँच दाँत होते हैं। इनके निकलने का समय नीचे दिया जाता है। दाँतों के निकलने के समय में बड़ा हेर फेर हो जाता है लेकिन मोटे तरीक़े से बच्चे की उमर में से चार निकाल देने से दाँतों की तादात मालूम हो जाती है; जैसे साधारणतया छः महीने में बच्चे के दो नीचे के दाँत आ जाते हैं; १२ महीने के लड़के के आठ दाँत होते हैं और २४ महीने के लड़के के पूरे २० दूध के दाँत होते हैं।

हर एक दाँत के निकलने के समय बच्चों को कुछ न कुछ तकलीफ़ होती है। दाढ़ में दाँत के निकलने की जगह पर दर्द होता है और वह स्थान सूज जाता है, हलकी हरारत और बेचैनी हो जाती है। भूख भी बन्द हो जाती है; और या तो कब्ज़ियत हो जाती है या दस्त आने लगते हैं। ऐसे समय अक्सर सर्दी और खाँसी भी हो जाया करती है

इस समय बच्चों की बहुत निगरानी की ज़रूरत है। यदि दूध के दाँतों में खोखला इत्यादि न हुआ हो तो जैसे जैसे नाज के दाँत निकलने को होते हैं वे ढीले होकर गिरते जाते हैं। दाँतों में यदि खोखला हो गया हो, या दुखते हों तो उसका फ़ौरन ही इलाज कराना चाहिए। नाज के दाँत या स्थायी दाँत ३२ होते हैं। इनके निकलने का समय नीचे दिया जाता है।

× × ×

दाँतों को रोज़ साफ़ कराना चाहिए और समझदार बच्चों को खाना खाने के बाद मुँह में उँगली डाल कर दाँतों को उँगली से साफ़ कर अच्छी तरह से कुल्ला करने की आदत डलानी चाहिए।

आहार—नवजात शिशु के लिए अपनी माता के दूध से बढ़ कर और कोई वस्तु नहीं हो सकती, क्योंकि उसमें सब प्रकार की वस्तुएँ जो उस बच्चे के स्वास्थ्य और विकास के लिए आवश्यक है, मौजूद होती हैं। पहले दिन जब कि माँ के बिलकुल ही दूध नहीं होता है बच्चे को १२ घंटे के बाद अर्थात् माता के अच्छी तरह से आराम कर लेने के बाद ५ मिनट के लिए चार चार घंटे बाद उसे दूध पीने के लिए लगाना चाहिए। शुरू के दो दिन तक उसे कुछ बूँद ही दूध मिलता है लेकिन बच्चे के लिए उसमें का हर एक बूँद बड़े महत्त्व का है क्योंकि यह दस्तावर होता है और इससे लड़के का पेट स्वाभाविक रीति से बहुत अच्छी तरह से साफ़ हो जाता है जैसा कि कोई भी ओषधि नहीं कर सकती। जब तक माँ का दूध पूर्ण रीति से न उतर आवे उसको तीन तीन घंटे पर बहुत थोड़ा थोड़ा शहद चटाना अच्छा है। माँ का दूध हो जाने पर एक महीने तक बच्चे को दिन में दो दो घंटे पर और रात में चार चार घंटे पर दूध पिलाना चाहिए और हर एक दफ़े बच्चे को १५ से २० मिनट तक स्तन पर लगाना चाहिए और पारी पारी से दोनों स्तन से दूध पिलाना चाहिए। एक महीने के बाद तीन तीन घंटे

पर दूध देना चाहिए और दो महीने के बाद चार चार घंटे पर और रात में छः छः घंटे पर दूध पिलाना चाहिए। जहाँ तक हो सके ठीक समय पर दूध पिलाने की आदत डलानी चाहिए, प्रायः स्त्रियों की आदत होती है कि जभी बच्चा रोने लगा तभी वे दूध पिला देती हैं। बार बार दूध पिलाने से बच्चे को अपच हो जाता है और वह दूध डालने लगता है या उसके दस्त आने लग जाते हैं। पेट में आँव अफरन और शूल होने लग जाता है और साथ ही साथ स्त्री भी कमज़ोर हो जाती है। रात को माता को सोने के पहले अपने बच्चे को जगा कर दूध पिला देना चाहिए और फिर छः सात घंटे आराम करने के बाद सवेरे पिलाना चाहिए। ऐसा न करने से माता को तन्दुरुस्ती बिगड़ जाती है और इसका बच्चे पर भी बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। दूध पिलाते समय माता को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह बच्चे को इतने ज़ोर से स्तन पर न लगावे कि उसकी नाक बन्द होकर साँस लेने में तकलीफ़ होने लगे। दूध पिलाने के बाद स्तन और बच्चे के मुँह को गरम पानी से धोकर सूखे कपड़े से पोंछ देना चाहिए।

बच्चे को माँ या दाई के साथ नहीं लिटाना चाहिए इससे दो ख़राबियाँ होती हैं। एक तो बच्चे को जल्दी जल्दी दूध पीने की आदत पड़ती है जो माँ और बच्चे दोनों को नुक़सान करती है, दूसरे बहुत जगह ऐसा भी हुआ है कि माता या दाइ की असावधानी से बच्चे दब कर मर गये हैं। मुख और नाक के दब जाने से बच्चे की साँस में रुकावट होने लगती है। उसमें इतनी ताक़त नहीं होती कि वह अपने आप करवट ले सके या अपनी माँ को जगा कर अपनी तकलीफ़ बता सके। माता की नींद भी बार बार जगने और कमज़ोरी से गाढ़ी होती है इसलिए बच्चे को साधारण हाथ पैर पटकने की उसको ख़बर ही नहीं होती और बच्चे की दम घुट कर मृत्यु हो जाती है। इसलिए जहाँ तक हो दूध पिलाकर उसे अलग चारपाई, खटोला या पालने पर लिटा देना चाहिए।

बच्चे को काफ़ी दूध मिलने की पहचान—ठीक से निद्रा आना और हर हफ़्ते वज़न में बढ़ना और प्रसन्न और संतुष्ट रहना बच्चे को ठीक और काफ़ी तादाद में दूध मिलने की निशानी है।

रोना, पेट का अफरना, सोते से चौंक पड़ना, बेचैनी, बार बार दूध डालना, दस्तों का आना और वज़न में न बढ़ना यह ठीक तादाद में दूध न मिलने की निशानी है। प्रायः ये सब तकलीफ़ें बच्चे को बार बार और अधिक दूध पिलाने से होती हैं। इसकी सबसे अच्छी पहचान हरे रंग के फटे हुए दूध के छिछड़ों का गिरना है। ऐसे समय में दूध देर देर में पिलाना चाहिए और एक आध बार दूध की जगह थोड़ा सा खौलाया हुआ पानी देना चाहिए या एक छोटा चम्मच भर कास्ट्रायल (रेंड़ी का तेल) एक बार पिला देना चाहिए।

माता का दूध छुड़ाना—नौ महीने की अवस्था पर दूध धीरे धीरे करके छुड़ा देना चाहिए। क्योंकि तब तक दाँत निकल आते हैं और बच्चे में अन्न और गाय के दूध के पाचन की पूरी शक्ति आजाती है। इस समय के बाद माता का दूध गुण की जगह अवगुण करने लगता है। हमारे देश में प्रायः देखा गया है कि मातायें दो तीन वर्ष तक के बच्चों को दूध पिलाती रहती हैं बल्कि जब तक दूसरे बच्चे की उम्मेद न हो जाय दूध पिलाना बन्द नहीं करतीं। यह बच्चे और माता दोनों ही के लिए हानिकारक है। दूध पिलाने के दिनों में यदि गर्भ रह जाय तो दूध पिलाना तुरन्त बन्द कर देना चाहिए। छः सात महीने की उमर के बाद जब एक आध दाँत निकल आवे तब अन्न देना चाहिए, और माता का दूध घटाना चाहिए और उसकी जगह पर ऊपरी दूध पीने की आदत डालना चाहिए। शुरू शुरू में हलका थोड़ा और शीघ्र ही पच जानेवाला अन्न और फलों का रस जैसे अनार, अंगूर, संतरा इत्यादि देना चाहिए।

ऊपरी दूध—बच्चों के लिए माता के दूध से बढ़कर स्वाभाविक भोजन कोई दूसरा नहीं है। जैसे जैसे बच्चा बढ़ता जाता है और उसकी

आवश्यकताओं में परिवर्तन होता जाता है उसी के अनुसार माता के दूध में भी परिवर्तन होते जाते हैं। जो बच्चे अपनी माँ के दूध पर पलते हैं वे गाय या अन्य प्रकार के दूध से पले हुए बच्चों की बनिस्बत ज़्यादा तन्दुरुस्त होते हैं। बच्चे को दूध पिलाने से माता की भी तन्दुरुस्ती ठीक रहती है क्योंकि दूध पिलाना प्राकृतिक और स्वाभाविक है। इसलिए जहाँ तक हो सके बच्चे को माता का ही दूध पिलाना चाहिए। कुछ दशाओं में जैसे माता का दूध न उतरने पर या माता की बीमारी या मृत्यु के कारण बच्चे को ऊपरी दूध देने की आवश्यकता पड़ती है। उस समय धाय या गाय इत्यादि या विलायती बने हुए दूधों के शीशी द्वारा पिलाने की ज़रूरत आ पड़ती है।

धाय—माता के दूध के बाद सबसे उत्तम धाय का दूध है। यदि किसी कारण धाय का प्रबन्ध न हो सके तब गाय या अन्य प्रकार का दूध देना चाहिए। जो धाय बच्चे को दूध पिलावे उसे तंदुरुस्त साफ़ और जहाँ तक हो चरित्रवान् होना चाहिए। धाय के रहने की जगह साफ़-सुथरी और हवादार हो। उसके खाने-पीने के लिए रुचिकारक जल्दी पचनेवाला सादा और पुष्टिकारक पदार्थ होने चाहिए। अधिक गरम मसाला, लाल मिरच, सिरका, शराब या दूसरे प्रकार के नशीले पदार्थ नहीं देना चाहिए। मांस भी जहाँ तक हो कम खाने देना चाहिए। दूध पिलानेवाली के लिए दूध, मक्खन और फल का खिलाना बहुत ज़रूरी है।

शीशी—बहुत से लोग धनाभाव या अन्य कारणों से धाय नहीं रख सकते। ऐसी दशा में उन्हें बच्चे को शीशी या अन्य प्रकार से दूध पिलाने की आवश्यकता होती है। बाज़ार में कई प्रकार की शीशियाँ बिकती हैं। किन्तु उन सबमें किश्तीनुमा शीशी कई कारणों से अच्छी है। ये शीशियाँ सुगमता से साफ़ की जा सकती हैं; इन शीशियों के एक ओर रबड़ की निपुल लगी होती है जिसमें छेद

होता है जिससे बच्चे के चूसने पर दूध की धार बच्चे के मुह में जाती है। निपुल का छेद ऐसा होना चाहिए कि शीशी उलटने पर उसमें से केवल बूँद बूँद दूध गिरे। दूध भरने से पहले शीशी और रबड़ को भले प्रकार से गरम पानी से कई बार धोकर साफ़ कर लेना चाहिए। ऐसा न करने से शीशी में लगा हुआ पुराना दूध जिसमें कि बहुत जल्दी अनेक प्रकार के रोग उत्पादक कीटाणुओं के पैदा हो जाने से दुर्गन्धि आने लगती है; ताज़े दूध में मिलकर उसे हानिकारक बना देंगे। सबसे उत्तम तो यह होगा कि शीशी को एक बर्तन में रख कर उसे १० मिनट तक पानी में प्रतिदिन खौला ले। जो लोग ज़्यादा ग़रीब हैं वे एक साफ़ चिम्मच और कटोरी से दूध पिला सकते हैं; लेकिन कटोरी और चिम्मच की सफ़ाई का पूरा ध्यान रखना चाहिए।

हमारे देश में छोटे बच्चों को एक मिट्टी या किसी दूसरी धातु के छिछले पात्र में रुई या साफ़ कपड़े की बत्ती (जिसे पोनी कहते हैं) से दूध पिलाया जाता है। इसमें बच्चे के पेट में या गले में बत्ती के अटक जाने का डर रहता है। हर दफ़े उसे अस्वच्छ हाथों से ठेल कर बच्चे के मुँह में डालने से रोग-कीटाणुओं द्वारा दूध के दूषित हो जाने का डर रहता है। दूसरे बर्तन के चौड़े और खुले होने के कारण दूध के मक्खी, चींटी, गर्द इत्यादि द्वारा दूषित हो जाने की सम्भावना होती है। तीसरे चिम्मच कटोरी या पोनी से बच्चे को जो माता के स्तन या निपुल से दूध खींचने में कसरत होती है उसके न होने के कारण उसके मुख और हृदय की मांसपेशियाँ कमज़ोर हो जाती हैं। इस कारण इन सबसे शीशी-द्वारा ही दूध पिलाना उत्तम है।

गाय का दूध—यह स्त्रियों के दूध की बनिस्बत ज़्यादा गाढ़ा और कम मीठा होता है। इस कारण उसमें चीनी मिला कर दिया जाता है। दो हिस्से ताज़े दूध में एक हिस्सा गरम पानी मिलाकर पिलाना चाहिए। और उसमें थोड़ी सी दूध की चीनी जो बाज़ार में मिल्कशुगर के

नाम से बिकती है मिला देना चाहिए। यदि मिल्कशुगर न मिले तो उसमें थोड़ी सी मिसरी मिला देना चाहिए। मिल्कशुगर दूध से बनाई जाती है और बच्चों के लिए बहुत गुणकारक है। जैसे जैसे बच्चे की आयु बढ़ती जाय पानी कम करते जाना चाहिए। यहाँ तक कि चार महीने के बाद केवल मीठा पड़ा हुआ दूध देना चाहिए। यदि दूध ठीक से न पचे तो पानी की जगह चूने का पानी मिलाकर पिलाना चाहिए। चूने का पानी बनाने की विधि यह है कि सूखे चूने को साफ़ पानी में घोल कर चीनी या मिट्टी के बरतन में २४ घंटे ढक कर रख दे। चूना जब नीचे बैठ जाय तब ऊपर का निर्मल पानी निकाल कर बोतल में बंद करके डाट लगा कर रख दे। जहाँ तक हो सके एक ही गाय का दूध देना चाहिए। जिन लोगों को सामर्थ्य है उन्हें स्वयं एक गाय रखना चाहिए। क्योंकि अपनी गाय की देख-भाल और उसके खाने-पीने की ख़बरदारी हो सकती है। शहरों में दूधवाले अक्सर अपनी गायों को शराबख़ाने का सड़ा हुआ महुआ खिलाते हैं। ऐसी गायों का दूध बच्चे को बहुत नुक़सान करता है। कोई कोई गाय मैले पर झुकती हैं ऐसी गाय को बाँध कर रखना चाहिए। फटा या अधिक देर का रक्खा हुआ दूध भूल कर भी नहीं देना चाहिए। बच्चे के पीने का दूध शीतोष्ण (हलका गरम) होना चाहिए। कभी कभी गाय का दूध ठीक से न पचने के कारण गधी या बकरी का दूध दिया जाता है। गधी या बकरी का दूध गाय के दूध की बनिस्बत अधिक पतला होता है। गधी का दूध मीठा भी ज़्यादा होता है और हज़म भी जल्दी हो जाता है। बकरी का दूध गधी के दूध की बनिस्बत देर में पचता है और पेट में कभी कभी अफरन (वायु) पैदा करने लग जाता है।

विलायती बने हुए दूध—शहरों में अच्छे दूध का मिलना बहुत कठिन है और यदि मिल भी गया तो उसका दिन भर रखना कठिन है। इस कारण से विलायत वालों ने छोटे बच्चों के लिए कई प्रकार के दूध

बनाये हैं जो ज़रूरत पड़ने पर थोड़ा सा गरम पानी मिलाते ही बहुत अच्छा शीघ्र पचने वाला दूध तैयार हो जाता है। बाज़ार में कई प्रकार के दूध मिलते हैं उनमें से इलेन बरीज़ फूड नं० १, ग्लैक्सो और हार्लिक्समाल्टेड मिल्क सबसे अच्छे हैं। इनका खिलाने-पिलाने का क्रम इनके डब्बों पर लिखा रहता है। यह दूध बच्चे की आवश्यकतानुसार थोड़ी मात्रा में और हर बार ताज़ा बनाना चाहिए। इन दूधों के देने के साथ थोड़ा सा कपड़े से छना हुआ ताज़े अंगूर, अनार या संतरे का रस देना आवश्यक है। इससे बच्चे को पाखाना साफ़ होता है, चित्त प्रसन्न रहता है और किसी प्रकार का रक्तविकार नहीं होने पाता। यह पाचक और भोजन की इच्छा पैदा करने वाला भी है। दाँत निकल आने पर इलेन्सबरी फ़ूड नं० २ मिलेन्स फ़ूड, लेबिक्स फ़ूड, हार्डिक्स माल्टेड मिल्क, ग्लैक्सो, अरारोटबिस्किट, मेलिन्सफ़ूड बिस्किट और ग्लैक्सो बिस्किट, मुलायम रोटी के टुकड़े दूध, दाल के पानी या शोरवे में भिगोकर थोड़ी मात्रा में दिये जा सकते है। और इनके ठीक से पच जाने पर बच्चे की इच्छानुसार इनकी मात्रा धीरे धीरे बढ़ाई जानी चाहिए। लेकिन जब तक कि दाँत अच्छी तरह से न निकल आवें इन पदार्थों को नहीं देना चाहिए। सब दाँत निकल आने पर अर्थात् दो वर्ष की अवस्था के बाद धीरे धीरे साधारण भोजन दे सकते हैं। लेकिन छः वर्ष की आयु तक यदि हो सके तो गाय का दूध अवश्य देना चाहिए।

अफ़ीम और अन्य मादक पदार्थ—छोटे बच्चों को साधारण रोगों के लिए जल्दी ओषधि न देनी चाहिए। ऐसे रोग बच्चे को कम दूध पिलाने या दूध को अदल बदल कर देने से दूर हो जाते हैं। अक्सर माताएँ और दाइयाँ अपने आराम के लिए बच्चों को थोड़ी थोड़ी मात्रा में अफ़ीम दिया करती हैं ऐसा करना उचित नहीं है। बहुत जगह पर दाई या माँ की असावधानी से अफ़ीम की मात्रा अधिक हो जाने के कारण बच्चों की मृत्यु हो गई है। कभी कभी अफ़ीम की डिब्बी चारपाई

के पास भूल से रक्खी रह गई है और ज़रा चैतन्य बच्चे ने उसे निकाल कर मुँह में जैसी कि उनकी आदत होती है रख लिया है जिससे उनकी अचानक मृत्यु हो गई है। ज़रा समझदार होने पर दूसरों को देख कर चार चार पाँच पाँच वर्ष के बच्चे बीड़ी, सिगरेट, हुक्का और सुर्ती पीने खाने लग जाते हैं। इन पदार्थों का हृदय, दिल, फेफड़े और आँख की रोशनी पर बहुत बुरा प्रभाव होता है इस कारण बच्चों को ऐसे हानि-कारक पदार्थों के पास फटकने भी नहीं देना चाहिए।

सातवाँ अध्याय

भिन्न भिन्न रोगों में रोगी के सम्बन्ध में जानने योग्य बातें

प्राय: रोगी के विषय में चिकित्सक परिचारक से कुछ बातें पूछते हैं उन प्रश्नों की एक सूची नीचे दी जाती है जिससे परिचारक को यह मालूम हो जाय कि उसे रोगी के सम्बन्ध में क्या क्या बातें चिकित्सक के आने से पूर्व जान रखनी चाहिए। सबसे अच्छा तो यह होगा कि एक नोटबुक या साधारण काग़ज़ पर उसका पूरा हाल लिख लेना चाहिए जिसमें हाल बतलाते समय किसी प्रकार की भूल न हो। सब लोगों की आर्थिक अवस्था ऐसी नहीं होती कि रोज़ चिकित्सक को अपने घर पर बुला कर दिखला सकें; ऐसी दशा में उसका हाल चिकित्सक से कहलाने की ज़रूरत पड़ती है। ऐसी दशा में यदि वह चिकित्सक के साधारण प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सकता तो रोगी की चिकित्सा ठीक किस प्रकार से हो सकती है। चिकित्सक के पास रोगी के हाल ले जाने वाले को भी पूरा हाल लिख कर ले जाना चाहिए जिसमें चिकित्सक के प्रश्न पूछने और रोगी का हाल ले जाने वाले के सोच सोच कर बत-

लाने में या कोई बात भूल जाने के कारण चिकित्सक का व्यर्थ समय नष्ट न हो, क्योंकि उसे तो बहुत से रोगियों का हाल सुनना और चिकित्सा करना रहता है। रोगी का नाम, उसकी उमर, उसका पेशा, उसका पता और चिकित्सा प्रारम्भ की तारीख़ अवश्य लिख लेनी चाहिए क्योंकि चिकित्सकों के पास इतने रोगी जाते हैं कि उन्हें पूरा पता मिले बग़ैर सबकी याद नहीं रह सकती और दूसरे कभी कभी तो रोगी के घर वाले केवल हाल कहला कर ही चिकित्सा करा सकते हैं। ऐसी दशा में यह भी लिख लेना चाहिए कि उसको ख़ास ख़ास क्या तकलीफ़ें हैं और कितने दिन से हैं और इस प्रकार की तकलीफ़ घरवालों में से किसी को कभी हुई तो नहीं है? रोगी कोई नशीली चीज़ (मादक पदार्थ) इस्तेमाल तो नहीं करता है?

इस रोग से पहले कभी उसे कोई सख़्त बीमारी तो नहीं हुई है! (यह प्रश्न आवश्यक है क्योंकि अक्सर भारी बीमारी के बाद कमज़ोरी की हालत में उसी रोग के कारण कोई दूसरी बीमारी उठ खड़ी होती है। जैसे मियादी बुख़ार (टाईफ़ाइड फ़ीवर) के बाद गाँठों में दर्द या छाती में सख़्त दर्द होना) यदि हुई तो कितने दिन बाद रोगी अच्छा हुआ या उसी समय से तबीयत कुछ न कुछ ख़राब रहती है? रोग किस प्रकार से शुरू हुआ और कौन सी तकलीफ़ पहले शुरू हुई और इस समय रोगी को किस बात की ख़ास शिकायत है? इसका कोई अभी तक इलाज हुआ? यदि हुआ तो उससे क्या फ़ायदा या नुक़सान हुआ? रोगी की दशा देखने से कैसी मालूम होती है? पहले से बहुत कमज़ोर हो गया है? आँखों या चेहरे पर पीलापन तो नहीं है? ओंठ नीले तो नहीं हैं? देह पर कहीं सूजन तो नहीं है? कोई अङ्ग सुन्न या बेकाम तो नहीं है? कहीं पर कोई गिलटी तो नहीं उभड़ी हुई है? श्वास कैसी चलती है? खाँसी तो नहीं आती है? यदि बुख़ार हो तो कितनी डिग्री का?

उदर-सम्बन्धी रोगों में जानने योग्य प्रश्न

भूख कैसी लगती है, पहले से घट गई है या बढ़ गई है ? खाना खाने से भूख बढ़ती तो नहीं है ? प्यास अधिक तो नहीं है ?

भोजन (पथ्य)—क्या क्या खाने को दिया जा रहा है ?

पेट में किसी प्रकार की तकलीफ़ तो नहीं है ? यदि है तो खाना खाने से घटती है या बढ़ती है ? यदि बढ़ती है तो कितनी देर बाद और किसी विशेष पदार्थ के खाने से तो नहीं बढ़ती है ?

उल्टी (वमन) कितनी बार और किस समय, सबेरे या शाम, दोपहर या रात को होती है ? खाना खाने से उसका सम्बन्ध है या नहीं ? इससे पेट के दर्द का कोई सम्बन्ध है या नहीं अर्थात् इसके बाद वह घटती है या नहीं ?

उल्टी में कितना और किस रंग का पदार्थ गिरता है और उसमें खटास और फेना तो नहीं है ?

डकार—डकारें तो नहीं आती हैं ? ये खट्टी सड़ी हुई या फीके या किसी ख़ास स्वाद की तो नहीं हैं ?

वायु का भर जाना—पेट में वायु तो इधर उधर दौड़ती हुई नहीं मालूम होती ? खाना खाते ही या कुछ देर बाद वह पैदा हो जाती है ? किसी ख़ास प्रकार के पदार्थ के खाने से तो नहीं होती है ? वायु ऊपर की तरफ़ चढ़ती है या नीचे को जाती हुई मालूम होती है ? वायु खुलती है या नहीं ? यदि खुलती है तो उसमें से बहुत सड़ी दुर्गन्धि तो नहीं आती है ?

पाख़ाना कितनी बार, किस प्रकार का और उसके पहले या बाद में ऐंठन, मरोड़ या किसी प्रकार का दर्द तो नहीं होता है ? उसमें आँव या ख़ून तो नहीं है, या उसके साथ में अधिक वायु तो नहीं है ?

यदि रोगी के नेत्र पीले पड़ गये हों या पसली में दाहनी तरफ़ जिगर के स्थान पर दर्द हो तो नीचे लिखी बातें जानना चाहिए—

दर्द किस स्थान पर और किस प्रकार का होता है इससे पहले कभी कोई सख़्त दर्द का दौड़ा तो नहीं हुआ जो कुछ समय तक रहा हो ? दर्द किसी एक ख़ास जगह पर है या एक जगह से उठ कर किसी ख़ास ख़ास स्थान पर फैल जाता है। दर्द के साथ साथ उल्टी तो नहीं होती ? दर्द बन्द होने के बाद आँखें पीली तो नहीं पड़ जातीं ? दाहने कन्धे में दर्द तो नहीं होता ? उसको बवासीर की शिकायत तो नहीं है ? पेशाब और पाख़ाने का रंग कैसा होता है ? बहुत खुजली तो नहीं होती ?

हृदय-सम्बन्धी रोग—रोगी के ख़ान्दान में गठिया, बाई या और कोई हृदय-संबन्धी रोग तो नहीं है ?

साँस का फूलना—साँस किस समय फूलती है ? उसको बिस्तर पर उठ कर बैठ तो नहीं जाना पड़ता ? बाईं तरफ़ छाती में दर्द तो नहीं होता ? यदि होता है तो एक स्थान पर रहता है या किसी तरफ़ फैलता है ?

धड़कन—खाना खाने या कुछ काम करने से यह घटता बढ़ता है और दिल कभी रुकता सा तो नहीं मालूम होता ?

निद्रा ठीक आती है या नहीं। यदि आती है तो कितनी देर के लिए और किस प्रकार से ? सपने तो नहीं दिखलाई पड़ते और उसमें रोगी चिल्ला या चौंक तो नहीं उठता।

चक्कर का आना (सर घूमना) कब और किस प्रकार से आता है ? थोड़े से काम करने के बाद बहुत थकावट तो नहीं मालूम होती ? पैरों पर कभी सूजन तो नहीं आती ? नाक से कभी ख़ून तो नहीं आता ?

फेफड़ों के रोग—घर वालों में से किसी को दमा, तपेदिक़ या

कंठमाला तो नहीं हुई है ? गले में ग्रन्थियाँ तो नहीं बढ़ गई हैं ? रात में अधिक पसीना तो नहीं होता है ? धीरे धीरे शरीर दुर्बल तो नहीं होता जा रहा है ?

खाँसी किस प्रकार की कितनी बार और किस समय आती है ? खाँसने से छाती में दर्द तो नहीं होने लगता ? खाँसते खाँसते उल्टी तो नहीं हो जाती ?

बलग़म (कफ़) कितना किस प्रकार और कैसे रंग का निकलता है ? उसके साथ में कभी ख़ून तो नहीं आता ? यदि आता है तो सख़्त खाँसी के साथ में या हर बार और वह लाल और फेनीला होता है या नीला मटमैले रंग का होता है ?

छाती का दर्द साँस अन्दर को खींचने से बढ़ता है या नहीं ? एक ही जगह पर है या हटता रहता है ?

साँस फूलना—साँस कब फूलती है ? अगर उसका दौड़ा होता है तो किस प्रकार का ?

गुरदे (वृक्क) और मूत्र-सम्बन्धी रोग—कभी पीठ में कमर के पास दर्द तो नहीं हुआ ? कभी तेज़ दर्द का दौड़ा तो नहीं हुआ जिसमें पीठ की दाहिनी या बाईं तरफ़ से उठ कर नीचे पेड़ू पर फैलता हुआ तो नहीं मालूम हुआ ? सिर में दर्द, उल्टी, सुस्ती, किसी प्रकार के दौड़े, लकवा, आँखों से कम दिखलाई पड़ना, साँस का फूलना इत्यादि की शिकायत तो नहीं है ? सबेरे सो कर उठने पर चेहरे पर ख़ास कर आँख के नीचे सूजन तो नहीं आ जाती ? पाख़ाना तो साफ़ होता है ?

पेशाब किस रंग की और कितने बार होती है ? रात को कई बार पेशाब करने के लिए उठना तो नहीं पड़ता ? बहुत जल्दी जल्दी दर्द के साथ पेशाब तो नहीं होती ? यदि दर्द होता है तो पेशाब से पहले या बाद में और किस जगह पर ?

खाल की बीमारियाँ—किस प्रकार के दाने हैं उनमें खुजली

होती है या नहीं ? दाने एक साथ निकले या किसी विशेष प्रकार से ? कभी गरमी की बीमारी तो नहीं हुई ?

दिमाग़ी बीमारियाँ (मस्तिष्क-सम्बन्धी रोग)—रोगी के घर वालों में से कभी किसी को किसी प्रकार का दौड़ा या लकवा तो नहीं हुआ ? रोगी शराबी तो नहीं था या कभी उसे उपदंश (गरमी) की बीमारी तो नहीं हुई या उसने संखिया, पारा, धतूरा, गाँजा, चरस इत्यादि का सेवन तो कभी नहीं किया ? कभी कान से मवाद तो नहीं आता था ? यदि दौड़ा आता है तो किस उमर से और उसके आने का कोई कारण भी है ? पहला दौड़ा किस समय किस प्रकार और कितनी देर तक आया ? दौड़े कितने कितने दिनों बाद होते हैं ? दौड़े से पहले रोगी को उस के होने की सम्भावना मालूम होती है या नहीं ? दौड़े की हालत में जीभ काट लेना, मुँह से फेना आना, पाख़ाना पेशाब तो नहीं हो जाता है ? दौड़ा ख़तम हो जाने के बाद सिर में दर्द, हाथ पैर का क़ाबू में न रहना, कुछ कहना और कुछ निकलना या नींद तो नहीं आ जाती ?

हड्डी और जोड़ों के रोग—रोगी के माता पिता या पूर्वजों को कभी तपेदिक़, गठिया, बाई या गरमी का रोग तो नहीं हुआ ? रोगी को स्वयं तपेदिक़, गठिया या बाई का दौड़ा, गर्मी, सूज़ाक या किसी प्रकार की चोट तो नहीं लगी ? यदि हड्डी में दर्द हो तो यह मालूम करना चाहिए कि वह किस समय बढ़ता है दिन या रात में ? यदि जोड़ों में दर्द है तो वह हर वक्त बना रहता है या उस जोड़ को हिलाने से होता है ? रात को रोगी सोते से दर्द के कारण चौंक तो नहीं पड़ता ? दर्द पर ऋतु का प्रभाव तो नहीं होता ? दर्द एक से दूसरे जोड़ों में हटता रहता है ?

छोटे बच्चों के रोगों में माता से नीचे लिखी बातें पूँछ लेना चाहिए—कितने बच्चे और हैं ? यदि किसी की मृत्यु हुई है तो किस

रोग से ? गर्भपात तो नहीं होते रहे हैं ? माता पिता के ख़ान्दान के लोगों की तन्दुरुस्ती कैसी है ? माता की गर्भावस्था में तन्दुरुस्ती कैसी रही ? बच्चा पूरे दिनों पर हुआ ? होते समय कोई असाधारण बात तो नहीं हुई ? बच्चे को माता का दूध मिलता रहा है या नहीं ? उसका भोजन क्या है ? पैदा होते समय बच्चे के शरीर पर दाने या चकत्ते तो नहीं थे ? किस अवस्था में उसके दाँत निकले और उसने चलना शुरू किया ? उसका हाज़मा और पाखाना कैसा है ? दस्त, उल्टी, गले का बैठ जाना, सरदी, कान का बहना, खाँसी, बुखार या किसी प्रकार के दौड़े तो नहीं आते ? इनमें से जो तकलीफ़ हो उसके विषय में ऊपर लिखे हुए प्रश्नों को मालूम कर लेना चाहिए।

हर एक रोग में ऊपर लिखे हुए सब प्रश्नों के मालूम करने की ज़रूरत नहीं है। रोगी को जो तकलीफ़ हो उसी के विषय में मालूम करना चाहिए जैसे यदि रोगी पेट में दर्द बतलाता हो या उसे दस्त आते हों तो इसी विषय के प्रश्नों का चिकित्सक को उत्तर देने के लिए तैयार रहना चाहिए। न कि पेट के दर्द के साथ और प्रश्नों का जैसे रोगी को खाँसी नहीं आती है उसको बलग़म नहीं निकलता है इत्यादि रोगी की अवस्था से सम्बन्ध न रखने वाले प्रश्नों का उत्तर दे कर चिकित्सक का समय व्यर्थ नष्ट न करना चाहिए।

थर्मामीटर—(चित्र नं० २७) यह एक शीशे की नली है जिसमें एक तरफ़ पारा भरा रहता है और बाक़ी भाग में ९३ से लेकर ११० तक मोटी और महीन लकीरें बनी रहती हैं जिसमें गर्मी पाकर पारा बढ़ कर ताप की डिगरी बतलाता है। इससे शरीर की ताप (हरारत) नापी जाती है। अच्छे थर्मामीटर की यह पहचान है कि उसका पारा गर्मी पाकर चढ़ जाता है लेकिन बग़ैर झिटका देकर उतारे हुए नीचे नहीं उतरता। इसको अधिकतर बग़ल में लगाते हैं। इसकी विधि यह है कि पहले थर्मामीटर को मजबूती से हाथ से पकड़ कर झटक कर

पारे को ९५ डिगरी तक उतार दे फिर बग़ल को सूखे कपड़े से पोंछ कर पारे वाले सिरे को इस प्रकार से रक्खे कि थर्मामीटर और खाल के बीच में पहना हुआ कपड़ा न पड़ने पावे। और फिर हाथ को मोड़ कर शरीर के साथ में लगा दे। थर्मामीटर को जैसा उस पर लिखा हो उससे कुछ अधिक देर तक रख कर बगल से बाहर निकाल ले यदि पढ़ना आता हो तो पारे का दर्जा लिख ले और जो न आता हो तो ज्यों का त्यों सावधानी से रख दे और बाद में चिकित्सक को दिखा दे।

नाड़ी और स्वास गिनना—नाड़ी की संख्या गिनने के लिए अँगूठे की जड़ की सीध में अपनी उँगली रक्खे। जब नाड़ी की फड़कन मालूम होने लगे तो घड़ी की सेकेन्ड को सुई से उसकी चाल गिने। जब तक बीमार निश्चल और शान्त न हो तब तक उसकी नाड़ी न गिने।

किसी काम जैसे पाख़ाने, पेशाब के लिए उठने या भोजन के बाद ही नाड़ी न गिनना चाहिए।

जब रोगी की साँस गिनना हो तो नाड़ी को हाथ में लेकर छाती के उठने बैठने पर ध्यान रख कर गिनना चाहिए। बच्चों के पेट पर हाथ रख कर साँस गिनना चाहिए। रोगी को यह बात न मालूम होने पावे कि उसकी श्वास गिनी जा रही है।

नाड़ी और श्वास की आपेक्षिक समता

अवस्था	नाड़ी की गति प्रति मिनट	श्वास की गति प्रति मिनट
प्रथम वर्ष	१३० से ११५ बार	३५ बार
द्वितीय वर्ष	११५ से १०० बार	२५ बार
यौवन अवस्था में	७८ बार	२० बार
प्रौढ़ावस्था में	७६ बार	१८ बार

नाड़ी की गति और ताप का आपेक्षिक संबन्ध

ताप की डिगरी	पर	नाड़ी की गति प्रति मिनट
९९°		८० बार
१००°		९० बार
१०१°		१०० बार
१०२°		११० बार
१०३°		१२० बार
१०४°		१३० बार
१०५°		१४० बार
१०६°		१५० बार

ज्वर—साधारणतया एक तंदुरुस्त आदमी के शरीर की गरमी ९८.४ डिगरी अर्थात् साढ़े ९८ के क़रीब होती है। किन्तु यह २४ घंटे एक सा नहीं रहती। रात्रि में यह घटती जाती है यहाँ तक दो और चार बजे के बीच में साढ़े ९७ के लगभग हो जाती है। फिर सबेरे ६ बजे के क़रीब साढ़े ९८ हो जाती है। दो पहर के बाद बढ़ कर ६ बजे शाम तक ९९ के क़रीब आ जाती है फिर उसके बाद घटना शुरू हो जाता है। साढ़े सत्तानबे से नीचे शरीर के ताप का गिरना कमज़ोरी की निशानी है और ९९ से ऊपर होने को ज्वर कहते हैं। ज्वर की अवस्था में भी साधारणतया ताप सबसे कम आधी रात के बाद होता है और दोपहर के बाद ज्वर का वेग बढ़ता है। १०२ डिगरी तक जानेवाले ज्वर को साधारण ज्वर, १०५ तक के ज्वर को तीव्र ज्वर और १०६ के ज्वर को कठिन ज्वर कहते हैं। ज्वर तीन प्रकार का होता है (१) हर समय क़रीब क़रीब एक-सा चढ़ा रहनेवाला ज्वर जैसा कि निमोनिया और टायफ़ाइड ज्वर के पहले हफ़्ते में होता है। (२) रेमीटेन्ट जिसमें ज्वर हर समय रहता है लेकिन सबेरे और शाम के ज्वर में दो तीन या चार

डिगरी का फ़रक़ होता है। जैसे टाइफ़ाइड के दूसरे हफ़्ते में होता है। (३) इन्टर मिटेन्ट अर्थात् उतर जानेवाला या पारी का बुख़ार जैसे इकतरा, तिजारी और चौथिया बुख़ार इसमें दिन में एक दफ़े ज्वर अवश्य उतर जाता है या पारी देकर आता है।

ज्वर का उतार—यह दो प्रकार से होता है। एक में ज्वर २४ घंटे के अन्दर नार्मल या इससे भी नीचे पहुँच जाता है जैसे निमोनिया में। इस प्रकार के उतार को क्राइसिस कहते हैं। दूसरे में ज्वर धीरे धीरे करके कई दिनों में उतर कर नार्मल हो जाता है। इस प्रकार के उतार को लाइसिस् कहते हैं। प्रायः क्राइसिस से ज्वर के उतार के साथ बहुत पसीना या दस्त होता है और रोगी की दशा बड़ी शोचनीय हो जाती है। रोग छूट जाने पर कमज़ोरी की हालत में अक्सर एक दम से ज्वर थोड़ी देर के लिए चढ़ आया करता है। कमज़ोरी की हालत में मामूली बातें जैसे किसी प्रकार की चिन्ता, उद्वेग, या कब्ज़ियत से ज्वर चढ़ आता है। इस कारण ऐसी दशा में परिचारक को विशेष सावधानी रखनी चाहिए।

क्लीनिकलचार्ट या रोगी की व्यवस्थादर्शक चित्र

इसमें जैसा कि चित्र नं० २७ क में दिखलाया गया है सबेरे और शाम या रोगी की दशा के अनुसार चार चार घंटे पर टेम्प्रेचर रोग का दिन, तारीख़, नाड़ी की गति, श्वास की गति, पाख़ाना, पेशाब के लिए ख़ाने बने होते हैं जिन्हें परिचारक को भर कर चिकित्सक को दिखलाने से रोगी की दशा तथा रोग का उतार चढ़ाव अर्थात् उसकी ओषधि का प्रभाव एक ही बार के देखने से मालूम पड़ जाता है। इसलिए परिचारक को चाहिए कि अपने हाथ से चित्र नं० २७ की तरह ख़ाने खींच कर या छपा हुआ चार्ट ख़रीद कर उसकी रोज़ ख़ानापूरी कर दिया करे।

पेशाब—चिकित्सक को दिखलाने के लिए या परीक्षा करने के लिए

सबेरे की पहली पेशाब किसी साफ़ शीशी में काग लगा कर या ढक्कनदार साफ़ मिट्टी या तामचीनी के बर्तन में ढक कर रखना चाहिए। कभी कभी चिकित्सक पूरे २४ घंटे की पेशाब जाँच करने के लिए रखने को कहते हैं। उस समय भी ऊपर लिखे तरीक़े से उसे रखना चाहिए। पेशाब को धूप से बचाकर ठंडी जगह पर रखना चाहिए।

पाख़ाना—यदि चिकित्सक को दिखलाने या जाँच कराने के लिए पाख़ाना रखना हो तो तामचीनी के साफ़ ढक्कनदार बेडपैन या मिट्टी के ढक्कनदार साफ कूँड़े में धूप से हटाकर और ढककर जिसमें उसमें से बदबू न निकले और न मक्खियाँ ही घुसने पावें किसी ठंढी जगह पर रख देना चाहिए। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उसमें पेशाब और आबदस्त का पानी जहाँ तक हो न गिरने पावे।

बलग़म और थूक—किसी ढक्कनदार छिछले साफ़ मिट्टी, तामचीनी या चौड़े मुख की ढक्कनदार शीशी में रोगी से थूकने के लिए कहना चाहिए और हर बार थूकने के बाद उसका ढक्कन बन्द कर देना चाहिए जिसमें मक्खियाँ न बैठने पावें।

परीक्षा हो जाने पर पाख़ाने, पेशाब और बलग़म के बर्तनों में रोग कीटाणु-नाशक पदार्थ जैसे फ़िनाइल, परमेगनट आफ़ पुटाश या कारबोलिक एसिड लोशन डाल देना चाहिए।

पर भी वे एक बिन्दु दण्ड अथवा सूक्ष्म सर्पाकार दिखलाई पड़ते हैं। इनकी उत्पत्ति विचित्र प्रकार से होती है। अनुकूल दशा में प्रत्येक कीटाणु के शरीर के मध्य में एक झिल्ली बन जाती है जिससे वह दो भागों में विभाजित हो जाता है। जिस स्थान पर यह झिल्ली बनती है उसके चारों तरफ़ कीटाणु के शरीर पर एक हलकी सी रेखा मालूम पड़ती है जो गहरी होकर कीटाणु को दो भागों में विभाजित कर देती है। पहले यह दोनों भाग आपस में जुड़े रहते हैं परन्तु अन्त में एक दूसरे से पृथक् होकर स्वतन्त्र जीवन आरंभ कर देते हैं।

कुछ समय के पश्चात् इन नवीन कीटाणुओं में भी इसी प्रकार से विभाजन द्वारा उत्पत्ति होने लगती है। एक कीटाणु पन्द्रह बीस मिनट में युवा होकर विभाजित होने लगता है। इस प्रकार से एक कीटाणु से दो, दो से चार, चार से आठ और आठ से सोलह होते जाते हैं। यदि हिसाब लगाया जाय तो ६ घंटे में एक कीटाणु से दो करोड़ के लगभग कीटाणु हो जायँगे। कुछ रोगों के कीटाणुओं की उत्पत्ति शीघ्रता से होती है और कुछ में अधिक समय लगता है। इससे इसका अनुमान किया जा सकता है कि किसी घाव में एक भी कीटाणु के प्रवेश हो जाने से थोड़े ही समय में कितने कीटाणु हो जायँगे। कीटाणुओं की उत्पत्ति और वृद्धि के लिए यदि अनुकूल दशाएँ नहीं मिलती हैं जैसे भोज्य पदार्थ और जल की कमी ताप की अधिकता इत्यादि उस समय उत्पन्न होनेवाले कीटाणुओं के रूप आकार में बहुत कुछ परिवर्तन हो जाता है जिससे वह अपनी जननी से भिन्न दिखलाई पड़ते हैं। इनको स्पोर कहते हैं। इनमें असाधारण सहनशक्ति होती है। भोजन जल की कमी और ताप का इन पर अधिक प्रभाव नहीं होता। वे वर्षों तक इसी दशा में जीवित रह सकते हैं। इसी प्रकार से कीटाणु-नाशक वस्तुओं का भी स्पोरों पर शीघ्रता से प्रभाव नहीं होता। अनुकूल दशा में इन्हीं स्पोरों से नये कीटाणुओं की उत्पति होती है।

प्रकृति में असंख्य कीटाणु हैं। उनमें से बहुत से ऐसे हैं जो मानव-जीवन के लिए लाभ-दायक ही नहीं किन्तु आवश्यक हैं। रोग उत्पादक कीटाणुओं की संख्या इनकी अपेक्षा अत्यन्त न्यून है। संसार के अन्य जीवों की भाँति इन कीटाणुओं को भी अपनी जीवनयात्रा के लिए भोजन, वायु, जल और उचित ताप की आवश्यकता होती है। कीटाणु अधिकतर अपना भोजन जीवित या मृत पदार्थों से ग्रहण करते हैं। बहुत से कीटाणु शरीर को बिना किसी प्रकार की हानि पहुँचाये हुए उसमें निवास करते हैं। किन्तु कुछ, जिन्हें रोग उत्पादक कीटाणु कहते हैं, शरीर में प्रवेश करके उसमें से अपनी वृद्धि और उत्पत्ति के लिए भोजन ले लेते हैं और कुछ ऐसे पदार्थ बनाते हैं जो कि शरीर के लिए हानिकारक होते हैं और जिनके प्रभाव से शरीर में नाना प्रकार के उत्पात होने लग जाते हैं और शरीर रोगी हो जाता है।

कीटाणुओं पर सूर्य्य की किरणों का प्रभाव—सूर्य्य की किरणों का कीटाणुओं पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। स्पोर जो कई वर्षों तक भोजन और जल के अभाव में जीवित रह सकते हैं सूर्य्य की किरणों के प्रभाव से घंटे आध घंटे में मर जाते हैं। राजयक्ष्मा (तपेदिक़) टायफ़ायड (मोतीझरा), ज्वर, कालरा (हैज़ा) के कीटाणु घंटे डेढ़ घंटे के अन्दर ही सूर्य्य के तेज़ प्रकाश के पड़ने से मर जाते हैं। बिजली की तेज़ रोशनी में भी सूर्य्य-प्रकाश की भाँति कीटाणुओं के नाश करने की शक्ति है।

प्रकृति में कीटाणुओं का कार्य—इनका मुख्य कार्य जटिल रचना वाले पदार्थों को सरल तत्त्वों में विभाजित करना है जो पदार्थ सड़ने लगते हैं वे इन कीटाणुओं द्वारा सरल तत्त्वों में विभाजित होने लगते हैं। यदि किसी प्रकार से खाद्य पदार्थों को इन कीटाणुओं से सुरक्षित रक्खा जा सके तो वह पदार्थ कभी नहीं सड़ेगा। दूध से दही जमना, उसका फटना और खट्टा होना, ऊख के रस से सिरका बनना, अंगूर और महुवे से शराब का बनना इत्यादि क्रियाएँ इन कीटाणुओं के परिश्रम का फल

हैं। कुछ कीटाणु पृथ्वी पर होते हैं जो ज़मीन की उपजाऊ शक्ति बढ़ाते हैं। कुछ मानव-शरीर की आँतों में रह कर पाचन-क्रिया में सहायता करते हैं।

कीटाणुओं की स्थिति—कीटाणु सब जगह पाये जाते हैं। वायु-मंडल में यह बहुत बड़ी संख्या में होते हैं। शहरों की वायु में और विशेष प्रकार से उन गलियों और सड़कों की वायु में जहाँ सदा धूल उड़ा करती है, गाँव, जङ्गल, पर्वत और समुद्र की वायु की अपेक्षा अधिक कीटाणु होते हैं। बातचीत करने में मुख से निकलने वाली वायु में थूक के सूक्ष्म कण होते हैं जिनमें ये कीटाणु होते हैं। जल में भी वायु की भाँति अनेकों कीटाणु होते हैं। मलहम-पट्टी और चीड़-फाड़ में प्रयोग किये जानेवाले जल को उबाल कर काम में लाना चाहिए। पृथ्वी में भी विशेष कर जिस भूमि में बहुत काल से खाद दी जा रही हो बहुत बड़ी संख्या में कीटाणु पाये जाते हैं। मल, मूत्र द्वारा जो बहुत प्रकार के कीटाणु शरीर से बाहर निकलते हैं वे सब पृथ्वी में मिल जाते हैं इस कारण पृथ्वी में जीवाणुओं की बहुत अधिक संख्या पाई जाती है। मानव-शरीर पर भी ये बहुतायत से पाये जाते हैं। त्वचा पर सदा धूल पड़ने के कारण अनेकों प्रकार के कीटाणु उपस्थित रहते हैं। इनमें से अधिकांश तो केवल त्वचा को जल से धो डालने से ही दूर हो जाते हैं किन्तु कुछ त्वचा की भीतरी सतह में पहुँच जाते हैं और कठिनता से दूर किये जा सकते हैं। मुख में कई प्रकार के कीटाणु होते हैं। छोटी और बड़ी आँतों में असंख्य कीटाणु होते हैं जो मल द्वारा बाहर निकला करते हैं। नाक में, कान और आँख के बाहरी भाग में भी कई प्रकार के कीटाणु रहते हैं। जब तक तन्दुरुस्ती ठीक रहती है तब तक कीटाणु का कुछ भी प्रभाव नहीं होता है किन्तु तन्दुरुस्ती के ख़राब होते ही इनसे कई प्रकार के रोग उत्पन्न होने लग जाते हैं।

सरजरी (डाक्टरी शस्त्र-चिकित्सा)

आज से एक सदी पहले संसार में इन कीटाणुओं के विषय में कुछ भी ज्ञान नहीं था। उस समय घावों में मवाद का पड़ना घावों के भरने में एक आवश्यक दशा समझी जाती थी, उस समय वे आपरेशन जो आजकल साधारण समझे जाते हैं बड़े बड़े शस्त्र-चिकित्सक करने से घबड़ाते थे। उन्नीसवीं सदी के अन्त में लुई पैस्चर नामक एक फ्रान्सीसी विद्वान् ने पता लगाया कि चीज़ों के सड़ने गलने का कारण अत्यन्त सूक्ष्म कीटाणु हैं। इसके बाद यह भी पता चला कि घावों में मवाद पड़ने का कारण भी यही कीटाणु हैं और घावों में मवाद पड़ना उनके भरने में आवश्यक नहीं वरन हानिकारक है क्योंकि यदि इन कीटाणुओं को कीटाणु नाशक ओषधियों के प्रयोग से मार दिया जाय या उनकी बाढ़ रोक दी जाय तो घाव बहुत जल्दी भर जाते हैं और भरने के बाद निशान भी बहुत कम रहता है।

बीसवीं सदी के प्रारम्भ में लार्ड जोजक लिस्टर नामक एक अँगरेज़ चिकित्सक ने एक नया तरीक़ा निकाला जिससे कि कीटाणु घाव में घुस कर उसमें मवाद पैदा न कर सकें। इस तरीक़े का नाम ऐन्टीसेप्टिक सरजरी पड़ा। इसमें कुछ पदार्थ, जिन्हें कीटाणु-नाशक कहते हैं, का व्यवहार किया जाता है जिनसे कि घाव के अड़ोस पड़ोस के कीटाणु मर जाते हैं। इस क्रिया की सफलता के लिए घाव जितनी देर तक खुला रहता है कारबोलिक लोशन से तर रक्खा जाता है। उसमें टाँके लगाने से पहले किसी तेज़ कीटाणु-नाशक विलयन (घोल) से उसे भली भाँति धो डाला जाता है और उसके बाद कीटाणु-नाशक पदार्थ से परिपूरित ड्रेसिङ्गस (मलहम-पट्टी का सामान) लगाया जाता है और घाव पोंछने के कपड़े के टुकड़े औज़ार और आपरेशन में या घाव की मलहम-

पट्टी करने में सहायता करने वालों के हाथ भी इसी विलयन से भले प्रकार धुला दिये जाते हैं।

इन सब क्रियाओं का तात्पर्य यह है कि कीटाणु, जो कि सर्वत्र विद्यमान हैं, घाव में किसी प्रकार से पहुँच कर मवाद न बनाने पावें और जो पहुँच भी जावें वे कीटाणुनाशक ओषधियों द्वारा नाश हो जायँ जिससे मवाद न पड़ने पावे।

ऐसेप्टिक सरजरी—आज कल के नवीन तरीक़े में भी इन कीटाणुओं से घाव को मुक्त रखने की चेष्टा की जाती है परन्तु अब इस बात की चेष्टा की जाती है कि घाव में किसी प्रकार से कीटाणु न घुसने पावें। इस कारण जो भी वस्तुयें या औज़ार चीड़-फाड़ करने के काम में आते हैं उन्हें कीटाणुओं से पूर्णतया मुक्त करने की चेष्टा की जाती है और इस प्रकार से कीटाणु घाव में नहीं पहुँचने पाते और व्यर्थ में कीटाणुनाशक पदार्थों को घाव में नहीं लगाना पड़ता क्योंकि इन पदार्थों से घाव में चुनचुनाहट और पीड़ा होती है। साथ ही साथ इनका प्रयोग भी बिलकुल नहीं छोड़ा गया है क्योंकि आपरेशन से पहले आपरेशन करने के स्थान की खाल आपरेशन करने वालों के हाथ, टाँके में लगाने वाले सूत्र इन्हीं पदार्थों के द्वारा कीटाणुओं से मुक्त किये जाते हैं।

आपरेशन करने या घाव को साफ़ करने से पहले हाथों की सफ़ाई—पहले हाथ को पाँच मिनट तक साबुन से रगड़ कर गर्म पानी (जितना सहा जा सके) से धोना चाहिए। नाख़ून की जड़ों और किनारों पर का मैल हटाने के लिए नेल ब्रश (नाख़ून साफ़ करने का ब्रश) व्यवहार करना चाहिए। इसके बाद साफ़ पानी से धोकर त्रिन आइओडाइड ऐन्ड स्पिरिट लोशन या पाँच फ़ी सदी कारबोलिक लोशन में पाँच मिनट तक रगड़ रगड़ कर धोना चाहिए ऐसा करने से घाव में मवाद पैदा करने वाले कीटाणुओं का नाश हो जाता है। घाव के पास मुँह करके बात करना और साँस छोड़ना बहुत बुरा है क्योंकि बोलने

से अत्यन्त सूक्ष्म थूक की छींटें निकलती हैं और साँस छोड़ने से नाक के अन्दर का मल हवा में मिल जाता है जो घाव में पहुँच कर उसको दूषित कर देता है।

आपरेशन करने के स्थान की खाल की सफ़ाई—जिस स्थान पर चीरा देना होता है उसको पहले यदि उस स्थान पर बाल हैं तो साफ़ तेज़ अस्तुरे से साफ़ कर ख़ूब गरम पानी और साबुन से अच्छी तरह साफ़ कर, साफ़ कपड़े से पोंछ कर तारपीन के तेल से भीगे हुए कपड़े को रगड़ कर उस स्थान की चिकनाहट दूर करके स्पिरिट में भीगे हुए कपड़े से रगड़ कर पाँच फ़ी सदी कारबोलिक लोशन से धो डाले फिर ढाई फ़ी सदी कारबोलिक लोशन में गाज को भिगो कर, निचोड़ कर इस स्थान पर रख कर ऊपर से आयलडसिल्क का एक टुकड़ा रख कर पट्टी से बाँध दे जिस समय चीरा लगाना हो उस समय पट्टी हटा कर फिर उस स्थान को साफ़ कर लिया जाता है।

चीर-फ़ाड़ में काम आने वाले औज़ारों की सफ़ाई—जितने औज़ार चीर-फाड़ के लिए काम में आते हैं उन्हें कम से कम पाँच मिनट तक सोडा मिले हुए पानी में उबालना चाहिए। जिन बर्तनों में औज़ार रक्खे जाते हैं वे भी पहले उबाले जाते हैं और उनमें कारबोलिक लोशन डालने के बाद शुद्ध किये हुए औज़ार रक्खे जाते हैं। तेज़ धार वाले औज़ारों की धार उबालने से बिगड़ जाती है इसलिए ऐसे औज़ारों को दस पन्द्रह मिनट तेज़ कारबोलिक लोशन में रख कर फिर स्पिरिट में डुबा कर के शुद्ध किये जाते हैं। चीर फाड़ करते समय जो औज़ार पृथ्वी पर या बग़ैर शुद्ध की हुई वस्तु पर गिर पड़े उसे फिर से उबाल कर तब और औज़ारों के साथ रखना चाहिए। आपरेशन हो चुकने पर ठंडे पानी से औज़ारों को धोकर फिर सोडा मिले हुए पानी में उबाल कर, ख़ूब अच्छी तरह से पोंछ कर, सुखा कर यथास्थान रख देना चाहिए।

ड्रेसिङ्ग (मलहम-पट्टी) की सफ़ाई—जो कपड़ा रुई या पट्टी

घाव पर रक्खी जाती हैं उन्हें ड्रेसिङ्ग कहते हैं। सस्ती मेल की झिरझिरी मलमल की तरह के कपड़े को गाज कहते हैं। यह घाव में बत्ती देने और ऊपर से रखने के काम में आता है। इस कपड़े में यह विशेषता है कि जिस प्रकार से बत्ती लम्प या लालटेन से तेल को चूसती है उसी प्रकार यह घाव के अन्दर की मवाद को सोख कर ऊपर फेंकता रहता है।

ड्रेसिङ्गस को भाप द्वारा शुद्ध किया जाता है। प्रायः जिस बर्तन में औज़ार उबाले जाते हैं उसी में एक चलनीदार डब्बा ड्रेसिङ्ग रखने के लिए होता है जिससे औज़ार के साफ़ होने के साथ साथ ड्रेसिङ्ग भी भाप द्वारा शुद्ध हो जाती हैं।

कीटाणु-नाशक पदार्थ—बहुत से पदार्थ ऐसे हैं जिनके तेज़ विलयन (घोल) में कीटाणु-नाशक शक्ति है और उनके हल्के विलयन कीटाणुओं की वृद्धि को रोकते हैं। इन पदार्थों के पाँच बड़े बड़े समुदाय किये गये हैं।

(१) फ़िनोल समुदाय—इसके अन्तर्गत (क) कारबोलिक ऐसिड या फ़िनोल है जो तारकोल (अलकतरा) से निकाला जाता है। यह एक टूरेंदार पदार्थ है जो कि पानी, एलकोहाल (मद्यसार) और ग्लीसरीन में घुलनशील है। अधिकतर इसका पानी में पाँच फ़ी सदी विलयन काम में लाया जाता है। इस शक्ति का विलयन मल-मूत्र में डालने के काम में आता है और घाव में लगाने के लिए दो या ढाई फ़ी सदी का विलयन काम में लाया जाता है। शुद्ध कारबोलिक ऐसिड सड़े हुए घावों पर मुर्दा मांस को दागने के काम में आता है। यदि इसके प्रयोग करने के समय पेशाब हरे रङ्ग की होने लगे तो इसे फ़ौरन ही बन्द कर देना चाहिए। इसका धातु पर कोई हानिकारक प्रभाव नहीं होता है। बहुत तेज़ कारबोलिक लोशन में तेज़ धारवाले चाक़ू इत्यादि रखने से उनकी धार कुंठित हो जाती है।

(ख) लाईसोल, क्रियोलिन, सिल्लिन और आईज़ल भी अलकतरा से निकाले हुए पदार्थ हैं। लाईसोल का एक या दो फ़ी सदी विलयन स्त्रियों के रोगों में डूशिङ्ग के काम में आता है और शुद्ध लाईसोल आपरेशन से पहले चाकुओं को शुद्ध करने के काम में आता है। सिल्लीन और आईज़ल कारबोलिक ऐसिड की अपेक्षा कम विषैले हैं और इनमें कीटाणुनाशक शक्ति अधिक है।

(ग) एक्रीफ्लेबीन या फ्लेवीन, इसके एक भाग का एक हज़ार भाग नमक के विलयन में घोल मवाद पड़े हुए घावों को धोने और इसमें डूबी हुई बत्ती देने के काम में आता है। इसका शरीर पर कुछ बुरा प्रभाव नहीं होता है और इसमें साधारण कीटाणुनाशक शक्ति है।

(घ) **वायलेट ग्रीन**—यह आपरेशन से पहले खाल को साफ़ करने के काम में आता है। इसमें मेथिल वायलेट और ब्रीलियेन्ट ग्रीन का मिश्रण, स्पिरिट और पानी में विलयन होता है। यह खाल और कपड़ों को रङ्ग देता है।

(२) **पारे से बनी हुई ओषधियों का समुदाय**—

(क) **परक्योराइड आफ़ मरकरी**—(रसकपूर) इसका एक भाग एक हज़ार से लेकर आठ हज़ार हिस्से पानी का विलयन प्रयोग किया जाता है। इसका प्रयोग साबुन के साथ नहीं हो सकता और न इससे धातु के औज़ार ही शुद्ध किये जा सकते हैं क्योंकि इसके विलयन में रखने से वे काले पड़ जाते हैं। यह बहुत ही विषैला पदार्थ है और बहुत ही थोड़ी मात्रा में इससे उल्टी और दस्त होने लग जाते हैं और कुछ अधिक मात्रा में मूर्छा और मृत्यु हो जाती है।

(ख) **विन आइओडाइड आफ़ मरकरी**—इसका प्रयोग परक्योराइड मरकरी की भाँति और उतनी ही शक्ति के विलयन में होता है किन्तु यह घाव और खाल पर न तो जलन पैदा करता है और न रक्त को परक्याराइड आफ़ मरकरी की तरह से जमाता है। इसमें

कीटाणुनाशक शक्ति अधिक है और यह इतना विषैला नहीं है। औज़ारों पर भी इसका इतना बुरा प्रभाव नहीं होता और यह साबुन के साथ में प्रयोग किया जा सकता है। कीटाणुनाशक लोशनों में इसका सबसे अधिक प्रयोग किया जाता है।

(३) आइओडीन समुदाय के कीटाणुनाशक पदार्थ—

(क) आइओडीन—यह एक विचित्र रंग का कालापन लिये हुए चमकीला पदार्थ है जो शुद्ध जल में बहुत कम घुलता है परन्तु पोटेशियम आइओइड मिले हुए जल और एलकोहाल या स्पिरिट में शीघ्रता से घुल जाता है। टिन्चर आइओडीन के नाम से जो पदार्थ दूकानों पर बिकता है वह आइओडीन और पोटेशियम आइओडाइड का नब्बे फ़ी सदी एलकोहाल या स्पिरिट में ढाई फ़ी सदी विलयन है। यह आपरेशन से पहले खाल पर लगाया जाता है, छोटी मोटी चोटों और कीड़े-मकोड़ों के काटे हुए स्थानों पर लगाया जाता है और टाँका देने की ताँत (कैरगट) इसी से शुद्ध की जाती है। इसका प्रयोग कीटाणुनाशक पदार्थों में सबसे अधिक होता है।

(ख) आइडोफ़ार्म—यह पीले रङ्ग का चूर्ण होता है जिसमें से विचित्र प्रकार की बहुत तेज़ गन्ध आती है। यह कीटाणुओं की वृद्धि और सड़न को रोक देता है। यह ख़ास तौर से उन घावों में प्रयोग किया जाता है जिनके सड़ने की आशंका रहती है। यह आइडोफ़ार्म इमलशन के रूप में नासूर में प्रयोग किया जाता है। इसका विषैलापन दूर करने के लिए अधिकतर इसको दूने या तिगुने परिमाण में बोरिक ऐसिड मिला कर प्रयोग किया जाता है।

(ग) आयोडोल, ऐरीस्टोल और लोरेटिन—यह सब चूर्ण के रूप में होते हैं जिनमें आइडोफ़ार्म सा गुण होता है किन्तु उसकी दुर्गन्धि नहीं होती।

(४) क्लोरीन समुदाय के कीटाणुनाशक पदार्थ—

युसोल, क्लोरएमीनटी, डेकिनस सोल्यूशन और मिल्टन इन सब ओषधियों का कीटाणुनाशक गुण इनमें से हाईपोक्लोरस ऐसीड निकलने पर निर्भर है। इनका विलयन अधिक समय तक नहीं ठहरता इसलिए ताज़ा बनाने की आवश्यकता होती है और इन्हें रोशनी से हटा कर या नीले रङ्ग की शीशी में रखना पड़ता है। ये अत्यन्त तीव्र दुर्गन्ध-नाशक भी हैं और घाव के मृतक तन्तुओं को विलीन करके घाव भरने में शीघ्रता करते हैं। यह जलन नहीं पैदा करते और डेसिङ्क्स को तर रखने और किसी भाग को डुबाये रखने के काम में आते हैं।

(५) भिन्न भिन्न प्रकार के कीटाणुनाशक पदार्थ—

(क) एलकोहाल और स्पिरिट—यह अत्यन्त तीव्र कीटाणुनाशक पदार्थ है और यह हाथ, रोगी की खाल और औज़ारों के शुद्ध करने के काम में आती है।

(ख) हाइड्रोजन पैरेक्साईड—यह जल की तरह स्वच्छ तरल पदार्थ है जो रक्त या मवाद के संसर्ग में आते ही फेना पैदा कर देता है। यह विषैला नहीं है। इसे घावों के साफ़ करने में और उनकी बदबू को दूर करने के लिए प्रयोग किया जाता है।

(ग) फारमेलीन—यह अत्यन्त तीव्र गला पकड़ने वाली गंधयुक्त जल सा स्वच्छ पदार्थ है। यह अत्यन्त तेज़ कीटाणुनाशक पदार्थ है। यह टाँके लगाने वाली ताँत को कड़ा करने और इसके एक भाग के एक हज़ार भाग जल में विलयन को कंठसम्बन्धी रोगों में गरारा करने और मवाद भरे हुए घावों के धोने के काम में आता है। इसका एक फ़ी सदी विलयन उन कमरों को जिनमें कि कोई छूत की बीमारी का रोगी रहता है पिचकारी द्वारा धोकर साफ़ करने के काम में लाया जाता है।

(घ) बोरिक एसिड—यह अत्यन्त मन्द कीटाणु-नाशक पदार्थ है किन्तु यह विषैला नहीं है। इसलिए बहुत भारी भारी घाव जिनमें तेज़

कीटाणुनाशक पदार्थों का प्रयोग नहीं किया जा सकता इसके लोशन से धोये जाते हैं। बोरिक ऐसिड के विलयन को शुद्ध करने के लिए उसको उबाल लेना चाहिए। यह अधिकतर नेत्र-सम्बन्धी रोगों में, आँखों के धोने के काम में आता है।

(ङ) और भी बहुत प्रकार के कीटाणुनाशक पदार्थों का प्रयोग किया जाता है जिनमें से प्रोटारगल, प्रकरिक ऐसिड, सैलिसिलिक ऐसिड और फ्रायरस बालसम का अधिक प्रयोग किया जाता है।

Printed and Published by K. Mittra at The Indian Press, Ltd., Allahabad